# मनुष्य बनो

शरणागति

शुभ संकल्प,

क्षमा,

प्रेम,

निष्काम कर्म,

ब्रह्मचर्य पालन,

# 'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टि-कोण से प्रचार करना और प्रेम,सभ्यता,आदर, शिष्टाचार,सदाचार सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है। मनुष्य बनना और बनाना

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल,सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जॉय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ साफ अवश्य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड आना चाहिये वी० पी० पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी। इसका वार्षिक मूल्य १५-०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुँचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछताछ करके वहाँ से जो उत्तर मिले व अगला अंक निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिये। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिये। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदः पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

# मनुष्य बनो


| वर्ष ३७ | जनवरी फरवरी १९८९ | अङ्क ४, ५ |
|---|---|---|


## नमस्कार

नमो सत्गुरुम् सच्चिदानन्द रूपम् ।
नमो अद्भुतम् अद्वितीयम् अनुपम ॥१॥

नहीं रूप कोई हैं सब रूप तेरे ।
तेरी सब ही प्रजा हैं और भूप तेरे ॥२॥

धरा सन्त अवत्तार जग को चिताया ।
दुःखी दीन को अंग अपने लगाया ॥३॥

दिया संग सत का मिला सत का जीवन ।
तेरे नाम पर शीश तन-मन है अर्पण ॥४॥

झुके राधास्वामी चरण हँसते-हँसते ।
तुझे कहते हैं सब नमस्ते-नमस्ते ॥५॥

# अपील

प्रिय पाठकगण ! हम गत माह में आपको पत्रिका नहीं भेज पाये। इसके दो कारण हैं। एक तो बाजार में कागज का उपलब्ध न हो पाना। दूसरा सत्संगी भाइयों का चन्दा न आने के कारण मुद्रा की कमी। आज बढ़ती हुई महंगाई के कारण पत्रिका का निकालना अति कठिन हो रहा है। चूँकि पत्रिका के पास अपना कोई फन्ड नहीं है। और यह केवल पाठकों के चन्दे पर ही आधारित है। और हमें केवल पचास प्रतिशत पाठकों से चन्दा प्राप्त हो पाता है।

ऐसी स्थिति में हम अपने पाठकों से निवेदन करते हैं कि पत्रिका के संचालन को बनाये रखने हेतु हमें अपना-अपना चन्दा शीघ्र भिजवायें व अधिक से अधिक ग्राहक बनाकर पत्रिका के संचालन में हाथ बटायें। अन्यथा जिन पाठकों का चन्दा नहीं मिल रहा है उन्हें मजबूर होकर पत्रिका भेजना बन्द करना पड़ेगा।

धन्यवाद
महेशचन्द्र

# धन्यवाद !

श्री बालकृष्ण गर्ग जयपुर ने अपने पुत्र विवाहोपलक्ष के उत्सव पर पालिका हेतु १०१) रु० भेजा है। हम उनके प्रति अपनी मंगल कामना एवं दीर्घायु होने की कामना करते हैं।

प्रकाशक

— × —

अगम निगम के मर्म प्रकाशक,
परम सन्त सद्गुरु जग तारक,
प्रेम – सिन्धु करुणा के सागर,
परम ज्ञान – विज्ञान उजागर ॥

भाग्य जगत् के उदय हुए हैं,
मनुज मात्र के पुण्य जगे हैं।
परम तत्व ही नर स्वरूप धर,
मानव दयाल जी प्रगट हुए हैं ॥

स्वामी जी और शालिग्राम ने,
राधास्वामी पन्थ चलाया।
दाता दयाल ने लिख समझाया,
परम दयाल ने उसे तपाया ॥

शब्द योग के उसी भेद को,
मानव दयाल जी दृढ़ा रहे हैं।
सार - तत्व–नवनीत मथन कर
मुफ्त जगत् को लुटा रहे हैं ॥

अब के चूक न होने पाये,
माया-मोह न अब भरमाये।
सत्संगत से लाभ उठा लें,
सद्गुरु को घट बीच बिठा लें ॥

परम सन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल जी महाराज के
अलौकिक व्यक्तित्व का एक सुन्दर मार्मिक

# शब्द-चित्र

रचनाकार : आचार्य श्री केशव प्रसाद वर्मा
अतिरिक्त सेशन जज, दिल्ली ।

विस्तृत वक्ष सुविकसित तन है,
गौर कान्ति उत्फुल्ल बदन है ।
कुँकुम-रंजित उच्च भाल है,
कण्ठ सुशोभित पुष्प माल है ।।

मन्त्र-मुग्धकर कमल-नयन है,
अधर बरसे अमिय वचन हैं ।
पीड़ित जन के उर की पीड़ा,
सुनने में रत सदा श्रवण है ।।

दिव्य ज्योति नख-शिख बरसाते,
शिशु सदृश निर्मल मुस्काते ।
ऋद्धि-सिद्धि कर कंज लुटाते,
चरण कमल नित मुक्ति दिलाते

समद्रष्टा समष्टि सुख दाता,
सब जीवों के पितु और माता ।
काल-जाल से जीव निवारें,
भव के बन्ध सहज निस्तारें ।।

गतांक से आगे।

धीरे योग के साधन का अधिकारी बन जायेगा और यदि न किया जायेगा तो कठिन आपत्तियाँ उपस्थित होंगी। इस लिए मैं अपने इन बन्दों के लगाने तथा बीड़ा तैयार करने की युक्ति सिखाता हूं। मनुष्य योग का साधन करने लग जाते हैं किन्तु वे ध्यान, सुमरन और भजन की विधि नहीं जानते और उनकी सम्पूर्ण क्रिया निरर्थक और व्यर्थ हो जाती है। यह तुम भली-भाँति समझ लो।"

"तुमने यह सोचा होगा कि मैंने यह बात यों ही कह दी है और तुम्हारे शास्त्रों के व्यवहारिक परिभाषाओं से दूर हैं। परन्तु इस कारण मैं अब तुमको इन शब्दों के सिलसिले में सचाई को समझता हूँ।"

"चकोरों को संस्कृत में चक्रवाहक कहते हैं। चक्र कहते हैं वृत को और वाक नाम है बात का। चक्र की बात करने वाली को चकोरी कहा जाता है। यह चकोरी तुम्हारी आँख है जो गोलाकार है और माथे के नीचे भाग में घूमती रहती है इसका अर्थ आँख है। यह आंख की चंचल वृत्ति है।"

"अब रहा सुवा (तोता) यह संस्कृत शब्द शुक से निकला है इसकी धातु 'शुभ' है जिसके अर्थ चमकने के हैं। इस शरीर में जिव्हा ही अग्नि का स्थान है, जहाँ वाणी द्वारा वह चमकती रहती है। इसलिये शुक या सुवा को जिव्हा से उपमा दी गई है। यह जिव्हा की चंचल वृत्ति है।"

"काग कौए को कहते हैं। यह संस्कृत शब्द 'क' (नकली शब्द) और 'ग' गाने से निकला है। इसका अर्थ कान इन्द्री से है जिसमें शब्द सदैव गूंजता रहता है। यह कान की चंचल वृत्ति से है। कौए का स्वभाव है कि जिस ओर उसने शब्द सुना तुरन्त उसी ओर झुक गया। इसलिए कौए की उपमा कान के लिये प्रयोग की है।"

इन तीन वृत्तियों के एकाग्र करने का साधन अन्तर की ओर करने का होता है। तब योग की कमाई होती है।

सार्वजित ने पूछा—"भगवन! इन इन्द्रियों का विकास तो बाहर की ओर है, भीतर की ओर यह क्या काम करेगी? यह बात समझ में नहीं आती।"

कबीर साहब बोले, "तुमने व्यर्थ ही बीच में बात काट दी। सम्पूर्ण शब्द की व्याख्या नहीं समाप्त होने दी। मैं तो स्वयं ही इसको कहने वाला था। अच्छा अब तो सुनो—इस शरीर में जितनी इन्द्रियाँ हैं वह बाहर भी काम आती हैं और भीतर भी काम करती हैं। इनका काम दोनों स्थानों पर रहना है। तुमने शास्त्र तो पढ़ लिये, किन्तु गुना एक को भी नहीं। इस कारण कोरे के कोरे रह गये। जिव्हा भोजन के समय रस लेती है और एक-एक ग्रास के स्वाद को जानती है। इसका ज्ञान तुमको है, परन्तु जब भीतर से डकार आती है। तब क्या स्वाद लेने वाली शक्ति की भीतर ही भीतर खट्टे, मिट्ठे, चटपटे, कसीले इत्यादि रसों का ज्ञान नहीं होता? अवश्य होता है। हाथ या चर्म को बाहर में गर्मी या सर्दी का ज्ञान है। परन्तु क्या जब तुम गर्म सर्द पानी पीते हो तो भीतर में गर्मी-सर्दी का ज्ञान स्पर्श शक्ति को नहीं होता? अवश्यहोता है। नाक बाहर की वस्तु को सूंघती है। भीतर भी उसको सुगन्धि दुर्गन्धि का ज्ञान होता है। कान बाहर के शब्द को तो सुनते ही हैं परन्तु भीतरी आनहद शब्द को भी वह सुन सकते हैं। आश्चर्य है कि यह बात तुमने योग सूत्र में नहीं पढ़ी। इसी प्रकार आंखें बाहर की ओर देखती हैं। तनिक आँखों को बन्द तो करो। बाहर का देखा हुआ सूर्य्य या अन्य कोई वस्तु भीतर भी दीखने लगती है। बाहर भीतर दोनों ही स्थानोंपर

इनका एक ही समान व्यवहार होता है। मैं कहता हूँ कि बाहर की ओर से चित्त की वृत्ति को रोक लो। जो युक्ति मैं बताता हूँ उसकी सहायता से भीतर की ओर आकर्षित करो वह अब बाहर मुखी नहीं रही। अन्तर मुखी हो गयी। बाहर का भय कुछ समय के लिये हट गया। अब अन्तर में उसका व्यवहार होने लगा। स्वभाव बन जाने पर फिर चित अध्यात्मिक बनकर सुगमता से उस ओर आकर्षित होने लगेगा। यह इन तीन बन्द लगाने का मन्तव्य है।

सार्वजित ने कहा—"अब शेष शब्द का अर्थ बताइये। मैं इसको खूब समझ गया।"

कबीर साहब ने कहा—"तीन बंद लग गये। आँख, कान, जिव्हा की क्रिया परिवर्तित हो गयी जब इनके कारण हृदय में कुछ एकाग्रता आ गयी तो मेंढक देवल पूजने के लिये बैठ गया पूजा नाम है किसी वस्तु के शृंगार करने का, शृंगार करने तथा सुन्दर बनाने का। संस्कृत भाषा में मेंढक की जिस शब्द से उत्पत्ति हुई है वह मंडक है। इसकी धातु है 'मदी' संवारना। अब संवारने की वृत्ति आई, जो ध्यान शक्ति को एक विशेष केन्द्र पर स्थिर करने का यत्न करती है उसी केन्द्र को देवल कहते हैं। देवल संस्कृत शब्द "देव" = दिव्य (प्रकाशमय) और "ल" ग्रह से निकला है। आन्तरिक केन्द्र वास्तव में अध्यात्मिक शक्ति का स्थान है जिसको वृत्ति संवारती है और कछुआ रूपी एकाग्र चित सावधान होकर शंख बजाता है। कछुआ शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत साधु 'क' (पानी) और 'छु' (काटने) से निकला है। इसका अर्थ यह है कि मन की वृत्ति एकाग्र होकर अब अपने भीतर से शान्ति की धार निकालती है और शान्त चित्त बनती जाती है। शंख बजाने का अर्थ यह है कि शंख संस्कृति शब्द "शुम" [शन्ति] होने से निकला है।

"यहाँ अब तक जो कुछ मैंने बताया है वह एकदम प्राकृतिक नियमानुसार है। तीनों वृत्तियों की क्रिया पहले भीतर की ओर फेरी गयी वह केन्द्र पर स्थिर हो गयी और उनके स्थिर हो जाने से स्वयं शान्ति प्राप्त होने लगी।"

"शब्द की एक कड़ी की यह व्याख्या है। अब दूसरी कड़ी की ओर ध्यान दो, जो यह बताती है कि जंगली हरिण नाचता है, सिंह ताल देता है, गधा मंगल गान करता है और भैंसा उस मंगल गान का अर्थ लगाता है।"

"हरिण संस्कृत शब्द है जो 'हरि' धातु से निकला है इस हरि शब्द के अर्थ हैं उज्ज्वल रंग लिते हुये पीला रंग भी। कहने का तात्पय यह है कि जिस समय वृत्तियों ने यह साधन कर लिया भीनर ही भीतर उज्ज्वल रंग लिये हुये पीत वर्ण का प्रकाश प्रकट हो गया और जंगली वृत्ति जो बाहरमुखी बनी हुई अमानुषिक दशा में थी, अब यह आन्तरिक प्रकाशमयी ज्योति को देखकर प्रसन्नता की मस्ती में नाचने लगी। और उसको अनुराग वृद्धि की दशा प्राप्त हो गयी। यह सहस्र दल कंवल या सहस्रार का दृश्य है जिसको योगी अपने अन्तर में देखते हैं। बघवा ताल देता है। उसका भी अर्थ सुनो बाघ संस्कृत व्याघ्र से निकला है। इसकी धातु है 'वी' पहले और 'घ्रू' (ऊंघना) जिस समय वृति अपने अन्तर में मस्त हुई उस को माल्यागिरि चन्दन जैसी सुगन्ध की लपक भीतर ही भीतर जान पड़ने लगी। यह इस स्थान का एक चिन्ह है जब सुरत ऊपर की ओर सहस दल कंवल में पहुंचती है तो ऐसी सुगन्ध जान पड़ती है। गधे के मंगल राग गाने का अर्थ सुनो। गधा संस्कृत शब्द ग्रोह से बनता है। ग्रोह से अर्थ है इच्छा तथा वासना के अर्थात अब मस्त वृत्ति को उस दशा की अधिकांश इच्छा है और मंगल आनन्द है। भैंसा अर्थ लगाता है इसकी

व्याख्या सुनो। संस्कृत में भैंसे को महश कहते हैं। महश संस्कृत शब्द 'मह' पूजा से निकला है। इसका अर्थ यह है कि सुरत मस्त होकर अधिक मस्ती की इच्छुक हो गयी और यह मन जो पहले तामसी होकर आलसी हुआ था अब समाहृत अर्थात समाधि लगाने वाला हो गया है और अपनी इसी अवस्था में लीन हो रहा है। यह पहले स्थान की समाधि है यह तीसरी कड़ी का अर्थ है।'

"चौथी कड़ी में आया है—बैल रबाब बजाता है। घोड़ी पखावज पर थाप देती है और ऊंट विष्णु पद गाता है। यह अवस्था त्रिकुटी के स्थान की है सुरत में अब सहस्र-दल-कवल का स्थान त्याग कर ओंकार देश को अपना केन्द्र स्थापित कर लिया और उसमें समाधि लगा ली। बैल के लिये संस्कृत वृषभ शब्द आता है। धातु 'वृष' (छिटकना) और वृषभ कान इन्द्रिय को भी कहते हैं अर्थात् पहले स्थान को छोड़कर अब कान इन्द्रिय ऊपर की ओर आकर्षित हो गयी वहाँ उसमें तीन अवस्थायें प्रकट हो गयी। एक तो बैल रूपी मन रबाब की भाँति भीतर ही भीतर छेड़ने लगा। दूसरे घोड़ा संस्कृत अश्व 'अ' (नहीं) और 'श्व' (साँस) यहाँ यह मृङ्ग है और पखावज की ध्वनि सुन कर अपने श्वासा की गति से अचेत हो गया। त्रिकुटी के स्थान पर जो शब्द प्रकट होता है वह ओउम ध्वनि के सदृश है और इसके सुनने से एक प्रकार की समाधि लग जाती है जो ऊंट के विष्णु पद गाने का मन्तव्य है। अर्थात् यहाँ आकर इसी मन ने ऊंट की भाँति गर्दन ऊंची करके ओउम् धुनि में अपने आपको स्थिर और शान्त कर लिया।

"ऐ सर्वाजित! यह इस छोटे शब्द का अर्थ है। जो शब्द योग का अभ्यास करते हैं वह इसको समझ सकते है। दूसरों को इसका समझना कठिन है वह इसको किसी अन्य रूप में

समझेंगे या कुछ भी न समझेंगे। सतगुरु का सत्संग प्राप्त हो तब यह जैसे का तैसा समझ में आता है।

सर्वाजित इसको सुनकर चकित हो गया। कहने लगा "मैं तो अब तक यही सुनता रहा हूं कि आप सँस्कृत नहीं जानते किन्तु आप तो योग्य पण्डित हैं और इस युक्ति से तो पण्डित भी किसी को नही समझा सकते।

कबीर साहब हँसे - मैं पण्डित नहीं हूं पंडित तुम हो। हाँ पंडितों को मैं प्रायः पण्डितों की रीति से समझा देता हूं। जो सीधे समझते हैं मैं उनको सीधे समझाता हूँ। जो टेढ़े समझते हैं उनको टेढ़े समझाता हूँ। टेढ़े और सीधे दोनों के समझाने के लिए मेरे पास युक्तियाँ हैं। योगी, ज्ञानी, भक्त, सूफी, वेदान्तियों में से मैं किसी को भी निराश नहीं करता, यहां तक कि यदि किसी ने अपने में मजजूब* की अवस्था बना ली है तो मैं स्वयं मजजूब के स्थान पर बैठक बना कर उसका सहायक बन कर आगे का मार्ग खोल देता हूं। इसी कारण मेरा नाम कबीर है।

## कबीर साहेब के रूप का अंग

सर्वाजित ने कहा—"मैं समझ गया हूं कि आप अतिवादी हैं। अतिवादियों के सामने किसी की भी नहीं चलती।

कबीर साहब ने कहा—"मैं वादी आदी नहीं हूं। वाद विवाद के विचार से मैं प्रकट नहीं हुआ। इस संसार में नैय्यायक (न्याय शास्त्र के ज्ञाता)जाप वादी, वितण्डावादी इत्यादि बनते हैं। वेदान्ती अद्वैतवादी, ब्रह्मवादी, मायावादी, आभास-

*साधन करने वाले का जब आगे का मार्ग रुक जाता है और वह प्राप्त अवस्था को सब कुछ समझ कर पागल सा हो जाता है उसको मजजूब कहते हैं।

वादी इत्यादि कहलाते हैं। सांख्य मत वाले अद्वैतवादी और पुरुष प्रकृतिवादी होते हैं। वैशेषिक प्रमाण वादी मीमाँसा कर्म वादी और योग, ईश्वरवादी है। इसी प्रकार अन्य मत-मतान्तर भी कोई न कोई वाद के अनुयायी बनकर उपस्थित होते हैं। और तुम आज मेरे पास आकर मुझको अतिवादी का नाम देने लगे हो। यदि ऐसे नाम देने से तुम्हारा कल्याण होता है तो तुमको अधिकार है। तुम इसी भांति मान लो। किन्तु इसके साथ जो मैं समझाता हूँ उसे समझ लो। तुम्हारे इस प्रकार मानने से मेरी क्या हानि है। मुझको कोई हिन्दू कहता है, कोई मुसलमान, कोई निर्गुण का उपासक बताता है कोई सगुण का। किसी किसी के विचार में मैं सूफी सालिक (पंथाई) भी हूं। परन्तु वास्तव में मैं क्या हूं इसकी समझ किसी को भी नहीं है।'

सर्वाजित ने पूछा—फिर आप हैं क्या ?

कबीर साहब ने कहा—"जो तुम भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से मुझे समझ लो मैं वही हूं। इतना तो मैं कह सकता हूँ परन्तु वास्तव में न मेरा आदि है, न अन्त है, न मेरा रूप है न मैं अरूप हूँ। यह सब जो तुम देख रहे हो मेरा ही पसारा है और मैं इस पसारे से न्यारा हूं।

जब हम रहल रहा नहिं कोई। हमरें मांहि रहल सब कोई।।
कहहू सो राम कौन तोर सेवा। सो समझाय कहो मोहि देवा।
फुर कर कहुँ मारे सब कोई। झूठे झूठा सगत होई।।
अन्धा कहै सबै हम देखा। तहां दिज्यार पैठ मुख पेखा।।
यह विधि कहुँ मानो जो कोई। जस मुख तस जो हृदया होई।
कहै कबीर हँस मुसकाई। हमरे कहले छूटो भाई।।

कबीर साहब का कथन है कि हँस की मुश्कें कसी हुई हैं। यदि वह छूटेगा तो हमारे ही उपदेश से छूटेगा।

वह अपने मन के विश्वास पर चलता है, उसके सम्बन्ध में विश्वास नहीं किया जा सकता कि वह अपने विश्वास के विरुद्ध काम न करेगा। खेत में हर प्रकार के बीज पड़े होते हैं वर्षा का पानी पाकर सब ही उभर खड़े होते हैं और फिर कठोर हो जाते हैं यह तो कभी होता ही नहीं कि खेत में केवल गेहूं ही उत्पन्न हों, कांटे कटीटे भी तो उत्पन्न हो जाते हैं और यदि यह जोर पकड़ लें तो गेहूं को दबा देते हैं इसी प्रकार मन की शुभ कामनाऐं अशुभ भावनाओं से दब जाने के खटके में रहती है और मन मत को ऐसे खटकों के समय सम्भालना कठिन हो जाता है और वह विघ्न में पड़ जाता है। जहाँ विश्वास है वहाँ ही सन्देह व शंकाओं की भी सम्भावना रहती है। कौन व्यक्ति निश्चित रूप से कह सकता है कि किसी के मन में किसी समय संकोच व सन्देह न उत्पन्न होंगे। उस चंचल मन में शुभ, अशुभ दो प्रकार की धारें चला करती हैं और यदि शुभ धार तोब्र और प्रौढ़ हो गई तो मन मत सुग-मता से नष्ट हो जाता है। इसलिये मैं गुरु मत का पक्षपाती बन कर आया हूं। यही मेरा रूप है। मैं जगत का गुरू हूं और जगत गुरू की दृष्टि से मैं जीवों को सन्देश दिया करता हूँ कि मन मत को छोड़ो, गुरू मत को ग्रहण करो। जिससे कठिना-इयों और दुःख के समय गुरु मत तुम्हारी सहायता कर सके और तुम सम्हलने के योग्य हो सको और मैं इसके समझाने बुझाने का प्रबन्ध कर रहा हूं। तुम मेरे पास विशेष भाव को लेकर आये थे मैंने विशेषयुक्ति से तुमको तुम्हारे ही दृष्टिकोण से समझा बुझा कर इस योग्य बना दिया है कि तुम अपने अहं-कार को छोड़कर अब ध्यान से मेरी बातों को सुनने लगे हो। अभी तक तुम मार्ग पर नहीं आये। तुम्हें बहुत कुछ उपदेश देना है। जब तुम उपदेश पाकर गुरु मत हो जाओगे, मन

मत के भ्रम से छुटकारा पा जाओगे। तुम्हारे शास्त्रों में बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनको तुमने मन मत होने के कारण स्वयं अभी तक नहीं समझा है और उसके ज्ञान न होने से यदि इस समय नहीं तो आगे चलकर अत्यन्त दुःख और अधीरता का कारण बनोगे।"

सर्वजित ने पूछा—मुझमें क्या अज्ञानता है ?

कबीर साहब ने उत्तर दिया—"एक प्रकार के नहीं किन्तु अनेकों प्रकार के अज्ञान तुममें विद्यमान हैं। तुमने षट शास्त्रों को पढ़ा है। मैंने सुन रक्खा है कि न्याय शास्त्र मानने वाले आत्मा के छः लक्षण बताते हैं। इच्छा, द्वेष, अहित, सुख, दुःख, ज्ञान ' मामूली न्याय के पण्डित इनको समझकर केवल यहां ही तक रह जाते हैं। वास्तव में ये छः लक्षण आत्मा के नहीं हैं किन्तु मन के हैं। आत्मा इनसे पृथक है और यदि यह लक्षण आत्मा के मान लिये जाँय तो फिर मन के क्या लक्षण मानोगे ? न्यायकों ने यहाँ बड़ा धोखा खाया है ! हाँ मन से मिले हुये आत्मा के ये लक्षण हो सकते हैं जब प्रश्न किया जाता है कि शुद्ध आत्मा का क्या लक्षण है तो फिर न्याय वाले यह कहते हैं कि वह सुषुप्ति की अवस्था में पड़े हुए प्राणी की भांति जड़ और अचल रहता है। यह उनका अन्तिम परिणाम है। अब यदि आत्मा जड़ माना जाय तो फिर बात क्या हुई। और इस मुक्ति की किसी को कब इच्छा होने लगी। इससे स्पष्ट है कि अब तक न्याय वालों को आत्म अवस्था का पता रक्त नहीं लगा। इसी भांति षट दर्शन की और शाखों में भी अज्ञानता का पता मिलता है। मैंने तुम को केवल दर्शन की एक भूल का पता दिया। इसी एक बात से समझ लो कि वह कहाँ तक जिज्ञासुओं को सन्तुष्ट कर सकते हैं वाद विवाद करने में तो नैय्यात्यक मत वाले बड़े है। वह भिन-भिन रूप

से जिव्हा बन्द करने का प्रबन्ध करते हैं किन्तु चोर उनके हृदय हर समय रहता है और बिना गुरु मत का सहारा लिये हुए यह चीर मन से नहीं निकलने पाता। यदि शुद्ध आत्मा जड़ है तो उसकी जड़ता का ज्ञान किसको हुआ? मन को हुआ या आत्मा को? यदि आत्मा को हुआ है तो वह तो जड़ है। जड़ वस्तु को अपनी जड़ता का ज्ञान नहीं होता। यह सर्व सिद्ध सिद्धाँत है। और यदि मन को आत्मा का ज्ञान हुआ तो मन आत्मा से श्रेष्ट हो गया क्योंकि ज्ञान वस्तु अथवा ज्ञात वस्तु सदैव ज्ञान वस्तु के अधीन रहती है और फिर यह यह आत्मा आदर्श नहीं हुआ। परन्तु आत्मा को सबने आदर्श माना है। इसी एक बात से स्पष्ट है कियह मन मत मार्ग है। जब तक गुरू मत की शरण न ली जायगी यह गुत्थी कभी सुलझाने में न आयेगी और समय-समय पर मन-मत को सतानी रहेगी जिसके कारण उसे शान्ति प्राप्त न होगी और जब शान्ति की प्राप्ति न हुई तो फिर यह मार्ग किस काम का हुआ। यही कारण संसार में मेरे प्रकट होने का है। मैं गुरू रूप में जीवों का कल्याण करने आया हूँ और तुमको अवसर देता हूँ कि शास्त्रों की संशय जनक तथा गूढ़ परिभाषाओं को छोड़कर साधारण भाषा में मुझसे सार वस्तु का पाठ पढ़। नहीं तो भ्रम की निवृत्ति की कभी आशा न रक्खो।

## मन के द्वैत अंग की उदाहरण कहानी

कहते हैं कि कोई यात्री मारवाड़ देश में यात्रा कर रहा था। जेठ मास की धूप,भूख प्यास की तेजी! मार्ग की थकावट अकेले की यात्रा! वह इन सब बातों से बड़ा दुःखी हुआ। मारवाड़ देश में मृग तृष्णा के जल का भ्रम हुआ करता है। और प्यासे मनुष्य उसके भ्रम में पड़कर अपना प्राण गंवाते हैं

यह भ्रम बड़ा विचित्र होता है। मनुष्य खुली आँखों से स्पष्ट देखता है कि आगे की ओर थोड़ी ही दूर पर नदी लहराती हुई पड़ती है उस पर पचासों महराबों के पुल बने हुये है। दोनों किनारों पर विशाल वृक्ष लगे हुए हैं। बगुले उड़ रहे हैं चील और कौये मंडला रहे हैं। मनोहर, विशाल भवनों की दोतरफा पंक्ति खड़ी हुई नदी की सुन्दरता बढ़ा रही है भूखे, प्यासे और व्याकुल मनुष्यों को अपनी ओर आने के शुभागमन का निमन्त्रण दे रहे हैं। यदि मनुष्य उनके भ्रम में पड़ गया तो मार्ग से कुमार्ग पर चला गया और भ्रम में पड़ गया नदी केवल थोड़ी दूर पर दिखाई दे रही है, कुछ दूर नहीं हैं परन्तु जितना वह आगे चलता है उतना ही वह आगे की ओर बढ़ती जा रही है यात्री तो समझता है कि अबवह समीप है परन्तु वह समीपता उसको दूर लिये जाती है यहाँ तक कि वह थक थका कर भूमि पर गिर पड़ता है और बेदम होकर अपना प्राण गंवा देता है समझदार मनुष्य तो थोड़ा सा अनुभव करके सचेत हो जाता है और आगे बढ़ने से अपने पगों को रोक लेता है किंतु हरिण मूर्ख होने के कारण पानी पीने के लालच में चौकड़ियाँ भरते हुये उसकी ओर बगटुट भाग निकलेते हैं। मरुस्थल तो मरुस्थल ही है। वह भ्रम मात्र है। अन्त में विवश हो वह तड़प तड़प कर उस रेतीली भूमि में मर जाता है। इस कारण इस मरुस्थलो दृश्य को संस्कृत में मृगतृष्णा का जल (अर्थात् हरिण की प्यास का पानी) कहते हैं।

हमारा यात्री इस बात का ज्ञान रखता था। उसने दो एक बार इसका अनुभव कर लिया फिर उसकी ओर से ध्यान हटा कर दूसरी ओर चल निकला। हृदय में अत्यन्त व्याकुल और दुःखी था। सौभाग्य से उसने रेगिस्तान के बीच में एक घना और ऊँचा वृक्ष देखा। गर्मी का झलसा हुआ था जान में जान

आई । दौड़कर उसकी छाया के नीचे शरण ली । धूप से जान छूटी, लेट गया । वास्तव में वह कल्प वृक्ष था । कल्पवृक्ष उस वृक्ष को कहते हैं जिसकी छाया के नीचे मनुष्य आकर जिस बात की इच्छा करता है तत्काल ध्यान मात्र ही से वह वस्तु उसके पास आ कर उपस्थित हो जाती है । समस्त धर्मों का विश्वास है कि यह वृक्ष स्वर्ग अथवा बैकुन्ठ में होता है और देवी देवता उसकी छाया के नीचे अपनी मनोकामना पूर्ण करते रहते हैं ।

यात्री को कुछ विश्राम मिला, प्यास लगी हुई थी । उसने सोचा यदि जल प्राप्त होता तो प्यास बुझ जाती । ईश्वर की लीला देखो उसी वृक्ष के नीचे एक स्वच्छ निर्मल कुण्ड बन गया जो जल से भरा था यात्री उसकी ओर बढ़ा खूब पानी पिया, हाथ-मुंह धोया । गर्मी खूब पड़ रही थी । कुण्ड में उतर पड़ा नहाया धोया, ठंडा हुआ कपड़े धोये और फिर छाया में आकर बैठ गया । इतने में उसको भोजन की इच्छा हुई । यहाँ तो केवल विचार करने की देर थी । स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ भी स्वच्छ पात्रों में रक्खे हुए स्वयं उपस्थित हो गये । उसने संतुष्ट होकर खाया पिया । फिर विचार किया कि यदि पलंग होता तो उस पर लेटकर विश्राम कर लेता । लो, पलंग भी आ गया और वह लेट गया । नींद आ गई । देर तक सोता रहा । इतने में रात्रि हो गई अब जाकर उसको पता लगा कि यह वृक्ष देवताओं का कल्प वृक्ष है और केवलविचार करने से प्रत्येक वस्तु प्राप्त हो जाती है । उसे स्त्री का स्मरण हुआ वह भी आ गई उसका वह पाँव दबाने तथा सुख देने लगी । इतने में रात्रि अधिक व्यतीत हो गयी । वह स्थान एकदम सुनसान और सन्नाटे का मैदान था । उसने सोचा कि यह धर्मशाला या

जंगली पशु सिंह, चीते आ जायें और बात की बात में मुझे चट कर जाँय।

परन्तु यह तो कल्प वृक्ष था। उसका यह सोचना था कि जंगली पशु भी आ गये। अब तो घबराया। हाथ-पाँव फूल गए। संभल न सका और जंगली पशुओं ने बात की बात में उसे फाड़ खाया और यात्री के जीवन का यह परिणाम हुआ।

कदाचित उसने गुरू का स्मरण किया होता तो गुरु जाकर सार वस्तु की शिक्षा देते और वह भय से मुक्त हो जाता मन में दुर्मति और द्विचताई उत्पन्न करने वाले भाव एकदम नाश हो जाते लेकिन उसको तो अवकाश भी नहीं मिला। वह जंगली पशुओं से बचने का विचार भी न कर सका और सुगमता से काल के गाल में चला गया।

कल्पवृक्ष वास्तविक वस्तु है या कल्पित! इसके तर्क की आवश्यकता नहीं है। केवल सत्यता का ध्यान हो। इधर उधर बहकने की आवश्यकता ही क्या है? यह मनुष्य का मन ही वास्तव में कल्प वृक्ष है जिसके अन्तर में जो भाव उत्पन्न होते रहते हैं वही क्रियात्मक रूप में बदल जाते हैं यदि भाव अच्छे हैं तो वह सुखी होता है और यदि भाव बुरे हैं तो दुःखी होता है। जीवन और मृत्यु भी विचार या भावनाओं के तमाशे हैं। यह संसार स्वयं भावनाओं का है और केवल भावनाओं की धारों से इस की उत्पत्ति है। जिनको तनिक भी ज्ञान है वह इसको समझते हैं और जो विवेकरहित हैं वह इसकोनहीं समझ सकते। मनुष्य जिस वस्तु का जैसा विचार करता है वैसा ही बन जाता है और उसको उसी दृष्टि से देखने लगता है। यदि वह यह मन शुभ को अशुभ समझ लेता है तो वह शुभ भी उसके लिए अशुभ होजाता है और हानिपहुंचा देता है अनुमान

कर देखो कसौटी पर परख देखो ! यह वह सच्ची और यथार्थ बात है जिसमें असत्यता का नाम नहीं है।

जब तक मनुष्य मन-मत बना रहता है वह शंकाओं में फंसा रहता है क्योंकि उसके चित्त की वृत्ति एक दशा में रहने का आधार नहीं पाती। हाँ, जो गुरु मत है उनको यह आधार प्राप्त हो जाता है और वह निष्कंटक हो जाते है क्योंकि गुरू ही का नाम वास्तव में निर्भयता है। इसी कारण शास्त्रों ने भी आदेश किया है कि कोई मनुष्य मन मत होकर किसी शास्त्र को हाथ न लगावे वरन शब्दों के भ्रम जाल में फंसकर नष्ट हो जायेगा। गुरु मत होकर गुरू द्वारा शास्त्र को प्राप्त करे। तब उसका तत्व समझ में आयेगा, नहीं तो वह शास्त्र भी भयानक होंगे और शंकाओं से छुटकारा न होगा। जो चाहे इसे कर देखे !

कबिरा निगुरा ना मिलै, पापी मिलै हजार।
यक निगुरे के सीस पर, लख पापी का भार॥

वेद, उपनिषद, वेदान्त इत्यादि सब ही गुरू के आधीन हैं और जब मन में गुरू धारण करने की इच्छा होती है, गुरू स्वयं संसार में प्रकट होकर अधिकारियों की तृप्ति की सामग्री उत्पन्न कर देते हैं।

इसी नियम के अनुसार कबीर साहब इस संसार में प्रकट हुये थे।

## गुरू और शिष्य का अंग

सर्वाजित कबीर साहब की बात सुनकर चकित हो गया। वह पण्डित था। सतगुरु की महिमा से अपरिचित नहीं था क्योंकि सत शास्त्रों की प्रणाली शिष्य और गुरू की परम्परा से बराबर चली आ रही है, परन्तु बात यह थी कि अब तक

उसने विद्या के गुरू ही को सब कुछ समझ रक्खा था। गुरू चार प्रकार के होते हैं। पितृ- मान, मातृ मान, आचार्यमान और सतगुरू। आचार्यमान गुरू या तो विद्या गुरू होगा या सम्प्रदाई गुरू होगा। सम्प्रदाई गुरू यदि कुछ समझ-बूझ वाला है तो ठीक ! वह कुछ तो अवश्य ही लाभकारी होगा किंतु वह प्राय: सतगुरु नहीं हो सकता। सतगुरू तो वह है जो पक्षपात तथा हठधर्मी की जड़ काटकर केवल सतपद का उपदेश है।

सर्वाजित ने पूछा –"सतगुरू की क्या पहचान है?

कबीर साहब बोले "इस समय यह प्रश्न व्यर्थ है। तुम मुझे देख रहे हो। मैं सतगुरु हूँ और तुम्हारे भ्रम की जड़ काट रहा हूँ और सत पद की ओर आदेश कर रहा हूं। यही सतगुरू की पहचान है।

"इस भाँति समझो कि जो दर्पण बनकर चेले के रूप को अपने अन्तर में दिखा दे वह सतगुरु है। और जो अपनी बारी पर स्वयं दर्पण होकर गुरु के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करे वह चेला है। दोनों बातें एक समान हैं। किन्तु इनका समझना कठिन है। दोनों ही एक दूसरे के लिये दर्पण हैं। दोनों में अन्तर नही है। इस प्रकार के गुरू-चेले जब परस्पर एक दूसरे के सन्मुख हो जाते हैं। तो एक का प्रतिबिम्ब तुरन्त ही दूसरे पर पड़ने लगता है और दोनों मिलकर एक हो जाते यह चेला और गुरू का व्यवहार है। और जब तक यह दशा नहीं होती तब तक गुरू और चेले होने का न लाभ होता है और न उसका कुछ आनन्द आता है बात सूक्ष्म है और सूक्ष्म बात को सूक्ष्म स्वभाव वाले ही समझ सकते हैं। स्थूल स्वभाव वाले को उसका पता नहीं चलता।"

सर्वाजित ने कहा. "मैं स्थूल स्वभाव का हूं। इस रहस्य का अब तक मुझे ज्ञान नहीं हुआ।"

कबीर साहब ने कहा—"नहीं, तुमको स्थूल स्वभाव कौन कहता है ? तुम स्थूल स्वभाव नहीं हो। हाँ, तुम में अज्ञान का भ्रम हो रहा है। चेले का नाम अज्ञानी और गुरू का नाम ज्ञानी है। ज्ञानी तो दोनों ही हैं। दोनों के बीच भ्रम का 'अ' पर्दा बनकर खड़ा हो गया है परन्तु दोनों के मन में एक समान चेष्टा है। चेला गुरू के रूप देखने और गुरू चेले को उसी का रूप दिखाने का इच्छुक है। दोनों में समान प्रेमोद्गार तथा उत्साह विद्यमान है। बीच में अज्ञान का पर्दा पड़ा है और यह पारस्परिक वासनाओं तथा पारस्परिक आकर्षण से प्रभावित होकर स्वयं फट जायेगा। यदि तुम में ग्रहण का और मुझमें योग्यता का संस्कार न होता तो पारस्परिक संसर्ग न होता और न इस प्रकार के प्रश्नोत्तर की व्यवस्था होती। लोहे के भीतर जो आकर्षण है वही 'चुम्बक में भी है। पारस्परिक आकर्षण में नाम-मात्र का भी अन्तर नहीं है। हाँ, दो भिन्न रूप अवश्य हैं। उनको एक-दूसरे के सामने आने की देर है। सन्मुख आते ही उसका पता मिल जाता है। मैं वार्तालाप करता हूं तुम मेरी बात बड़ी प्रेम और भाव से सुनते हो। क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि दोनों में किसी विशेष भाव ने स्थान बना लिया है ? दोनों होने को तो एक समान है केवल थोड़ी सी स्थूलता ऐक में आ गयी है। वह बातों की रगड़ से बात की बात में दूर हो जायेगी और फिर दोनों एक रूप हो जायेंगे। यह गुरू तथा चेले का रहस्य है।

सर्वज्ञित ने कहा—"आपकी बातों में सचाई है किन्तु मैं उसको भलीभाँति नहीं समझ रहा हूं।"

कबीर साहब ने फिर कहा—"किन्तु समझने की प्रबल इच्छा तो है वरन् तुम मेरी सुनने वाले कब थे। चेला बनने का गुण केवल अज्ञानी में ही होता है। दूसरे को उसका अधि-

कार नहीं है। अज्ञानी वह है, जिसमें ज्ञान दबा हुआ अंधकार की दशा में है किन्तु वह आन्तरिक भाव से ज्ञान की आकाँक्षा रखता है। दर्पण धुंधला हुआ करे किन्तु प्रतिबिम्ब के स्वीकार करने का संस्कार तो उसमें है। यह धुंधलापन सत्संग के प्रभाव से चला जायेगा। चेला हृदय में कहता है—

जैसा ढूँढत मैं फिरूँ, तैसा मिला न कोय।
तत्व-वेत्ता तिर्गुण रहित, निर्गुन्ता रत होय॥

अर्थात् चेले के हृदय में वह इच्छा है कि मुझको कोई ऐसा मनुष्य मिले जो तत्व-वेत्ता हो, गुणों के झगड़े से मुक्त और निर्गुण स्वरूप हो तब उसको अपना गुरू बनाऊं। इस प्रकार का आदर्श तो शिष्य में पहिले से ही है और उस भावना से प्रभावित होकर वह खोज में है। यदि उसमें यह भावना न होती तो वह खोज क्यों करता? जिसके मन में प्रश्न उत्पन्न होता है उत्तर भी उसी के साथ रहता है। हाँ, इतनी सी बात है कि प्रश्न के उत्तर पाने का गुरू उसको नहीं मिला है। गुरू के प्राप्त हो जाने पर वह आप मिल जायेगा। इसी का नाम गुरू है।

सर्वाजित ने प्रश्न किया—"तीन गुणों की व्याख्या के सिलसिले में इस रहस्य के विवरण जानने की प्रबल इच्छा है।

कबीर साहब ने उत्तर दिया—"गुण तीन है तम, रज, और सत। तम में आलस्य, सुस्ती और दुःख है। रज में चुस्ती खीचतान और सुख-दुःख दोनों हैं। सत में स्थिरता, आनन्द, तथा स्वच्छता है। पहला मूढ़ है। दूसरा चंचल है और इन दोनों में से किसी को भी ज्ञान का अधिकार नहीं है। ज्ञान का अधिकार केवल सत वाले को है। वह अज्ञानी मात्र है और यही सत गुण या सतोगुण अज्ञान का पर्दा है जिसके कट जाने से ज्ञान का सूर्य उदय हो जायेगा।"

सर्वाजित बोला—"आपकी बातों के अनुसार मुझ में अभी तक रजोगुण के प्रमाण अधिकाँश में उपस्थित हैं,क्योंकि मैं अभिमानी तथा अहंकारी बनकर आप को हराने आया था शास्त्रार्थ करना, विजय की लोलुपता, दूसरों को पराजित करना यह रजोगुण की विशेषतायें हैं। यह चंचलपने के चिन्ह हैं। यदि मैं चंचल हूं तो फिर आपके कहने के अनुसार मुझमें अभी तक ज्ञान का अधिकार नहीं आया। आपके दो दिन के सत्संग से मैं भली भांति समझ गया हूँ।

कबीर साहब ने कहा—"तब ही तो तुम को मैं अधिकारी कहता हूं। तुम यह बात कहते हो जो मुझे कहना चाहिए। तुम में मूढ़ता नहीं है इसलिये तुमने तमोगुण को जीत लिया है। तुम अहंकार वश मुझे परास्त करने आये थे जिससे स्पष्ट है कि अभी तक तुम रजोगुण के वशीभूत हो। तुम आये। बहुत अच्छा हुआ। रजोगुण अन्तिम सीमा पर पहुंच चुका था उसका अन्त हो चुका था। मैंने तुमको देखा। तुम्हारे भाव का प्रतिबिम्ब मुझ पर पड़ा। मैं जान गया कि तुम कैसे प्रश्न मुझसे करोगे और उस ज्ञान से मैंने तुम्हारे उसी हथियार से धर दबोचा। रजोगुण स्वयं पराजित हो रहा है। अब तुमको इतना तो ज्ञान हो गया है कि तुम रजोगुणी थे। तुमने हार मान ली। हार मानना अज्ञान है। अब तुम अज्ञानी हो। तमोगुणी स्थूलता तो तुम में थी नही रजोगुणी स्थूलता लेकर तुम मेरे पास आये। वचनों के रगड़ से वह भी जाती रही। दो गुणों से तो छुट्टी मिल गई। अब केवल अज्ञान ही अज्ञान रह गया और भ्रम का केवल झीना सा पर्दा है। पहिले तुम और थे और अब और हो। अवस्था बदल गयी। विचार ने दूसरा रूप धारण कर लिया। इसी अज्ञान का नाम सत तथा सतोगुण है। मैं इसको और भी खोलकर तुमको समझा देता

हूं। फानूस के भीतर बत्ती जल रही थी। उस पर दो काले और लाल गिलाफ चढ़े हुये थे। पहिले काला पर्दा हटाया गया यह तमोगुण था। पहिले काले पर्दे ने प्रकाश को खूब आच्छादित कर रक्खा था। उसके हटाते ही लाल गिलाफ की लाली अग्नि के समान दमकने लगी, क्यों कि इस लाली के दमकाने वाला प्रकाश भीतर से छन-छन कर आ रहा था यह रजोगुण था। अब लाल गिलाफ भी उतार दिया गया। अब फानूस का उज्ज्वल पर्दा नाम मात्र के लिये रह गया है। इसके भीतर से प्रकाश तो स्पष्ट दीख रहा है किन्तु थोड़ा धुंधला है। यह सतोगुण है। पर्दा तो यह भी है और पर्दा के कारण प्रकाश को कुछ न कुछ मन्द होना पड़ता है इसी मन्द का नाम अज्ञान है और यह बिल्कुल भ्रम है। तुम घबराते क्यों हो। तनिक धैर्य रक्खो। जी खोलकर बात करते चलो। सतसंग का रगड़ा लगने दो। यह भी बात की बात में उतर जायेगा। उस समय अज्ञान भी एकदम नष्ट हो जायेगा और तुम अपने भीतर जिस रूप का साक्षात्कार करोगे वही तुम्हारा रूप होगा।"

बिरछा पूछे बीज सौं, कौन तुम्हारी जात।
बीज कहे उस वृक्ष से, कैसे भये फल पात ।।१।।
डाल भई है मूल से, मूल डाल के माँह।
सब ही पड़े भरम में, मूल डाल कुछु नाँह ।।२।।
मूल कबीरा गह चला, फल खाया भर पेट।
चौरासी का डर नहीं, ज्यो चाहे त्यों लेट ।।३।।
आदि मूल सब आप में, आपहि में सब होय।
ज्यों तरुबर के बीज में, डाल पात सब सोय ।।४।।
जिन ढूंढ़ा तिन पाइयो, गहरे पानी पैठ।
मैं बपुरी ढूंढ़न चली, रही किनारे बैठ ।।५।।

"जिस प्रकार यदि वृक्ष बीज से बात करे और बीज वृक्ष से प्रश्न उठाये तो एक समान होगा। वृक्ष क्या है ? बीज ही के फैलाव का नाम तो वृक्ष है और बीज क्या है ? सम्पूर्ण वृक्ष के भीतर वही बीज रस बनकर फैला हुआ है। बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज। यह सिलसिला इसी प्रकार अनादि तथा अनन्त काल से चला आया है। ब्रह्म से माया, माया से ब्रह्म। शिव से शक्ति तथा शक्ति से शिव। यह ऐसा ही होता रहता है, किन्तु इन बातों से अधिक भ्रम में न पड़ना। समझते चले चलो। जब भेद मिल जायेगा, अज्ञान के दूर हो जाने से वास्तविक तत्व का ज्ञान हो जायेगा।"

सर्वाजित का आश्चर्य इन साधारण बातों से बढ़ता ही चला गया। वह कबीर साहब को अपढ़ जुलाहा समझ कर परास्त करने आया था। अब उसको न स्थिर होने का स्थान न भागने का मार्ग। वे मनुष्य हैं या देवता हैं ? ऐसा विचार करता है।"

सर्वाजित ने कहा "भगवन् ! इन तीन गुणों से छुटकारा पाना है। यह मैंने आपकी बातों से समझ लिया।"

कबीर साहब बोले—"हाँ, यही बात है। पर्दों को फाड़ना ही तो उद्देश्य है। पर्दा तो पर्दा ही है। जब तक एक पर्दा भी पड़ा रहेगा तब तक असलियत, वास्तविक तत्व और निज रूप का साक्षात्कार किसी प्रकार न होगा। यह बनी-बनायी और मानी-मनाई बात है। मूर्ख से मूर्ख मनुष्य इसको समझ सकता है।"

## तीन गुणों के समझाने की कहानी

एक पण्डित भागवत की कथा बाँचा करता था। यही उसके उदर पूर्ति के उद्यम का साधन था जो कुछ कथा पर चढ़ावा चढ़ता उसी से वह निर्वाह करता, किंतु अपने देश में

मनुष्य को सम्पत्ति, कीर्ति तथा सन्मान कम प्राप्त होता है। 'घर का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध' नदी, कन्या, मोती का आदर अपने देश में नहीं होता। जब वह देश को छोड़कर परदेश को जाते हैं तब उनके महत्व में वृद्धि होती है बाग का गुलाब काँटे से रूँधा रहता है। माली जब उसको डाली से अलग कर देता है तब वह मनुष्यों के हाथ, सिर तथा देवताओं के मस्तक पर चढ़ता है, अधिक सौन्दर्य को प्राप्त होता है या किसी सभा ( महफिल ) का गुलदस्ता बनकर उसकी शोभा बढ़ाता है। इसी प्रकार घर में पंडितों की दशा होती है वह नाना प्रकार की विपत्तियाँ सहन करते रहते हैं।

पंडित स्याना था। वह घर की चारदीवारी से पोथीपत्रा वगल में दाब कर निकला। परदेश गया किसी शहर के मंदिर में बैठ कर कथा बाँचने लगा। सारे शहर में धूम मच गयी कि कहीं से कोई बहुत बड़ा चतुर पंडित आया है और मन्दिर में कथा बाँचता है। ठठ के ठठ मनुष्य आने लगे और लगा खूब खूब चढ़ावा चढ़ने। जब कथा समाप्त हो गयी, पण्डित को इतना माल हाथ लगा कि वह निर्धन से धनवान बन गया। सम्पत्ति की सम्पत्ति मिली और पंडिताई की साख बढ़ गयी। वह मन में बड़ा प्रसन्न हुआ। कथा सुनने वालों से विदा हुआ और अपने घर की ओर चल दिया।

वगल में पोथी पत्रा ! सिर पर रुपये पैसे की गठरी। एक हाथ में डण्डा। दूसरे में खाने पीने के सामान की पिटारी।

चलते-चलते वह शहर से दूर निकल आया। किसी घने जंगल में पहुंचा। वहाँ तीन डाकू रहते थे। जो कोई इक्का दुक्का यात्री आता वह उसको लूट लेते थे और यही नहीं किंतु प्रायः प्राण तक ले लेते थे। यह उनका नियम था और नियम के अतिरिक्त यही उनका व्यवसाय बन गया था। यह

सीधी राह चला जा रहा था। डाकुओं ने ललकारा "ठहर जा, जान की कुशल नहीं है।" वह जी में डरा। यह अकेला था वह तीन थे। एक के लिये दो बहुत होते हैं। अकेली जान तीन का मुकाबला कैसे करती ? वह अभी सोच ही में था कि डाकू उस पर टूट पड़ा। सबसे पहले डण्डा छीन लिया। फिर उसे पृथ्वी पर चित्त पटक दिया। वह मूर्छित हो गया। एक डाकू ने उसको खूब कस दिया और एक वृक्ष के तले से रस्सी लगाकर बाँध दिया। कौन जाने बाँधने का काम उसकी पगड़ी या धोती ही से लिया गया हो ? परन्तु नहीं, धोती और पगड़ी को डाकू कब छोड़ने वाले थे। वह बेचारा वृक्ष से बंधा हुआ है। यह उससे पोथी पत्रा और पिटारी को उलट पलट कर देख रहे हैं। "वाह वा ! आज तो बहुत माल हाथ आया। किसी अच्छे का मुंह देखकर उठे थे।" वह उसे बंधा हुआ छोड़कर घर चले गये। मालमता वहां धर आये। भय था कि ऐसा न हो कि डाका मारने का पता लग जाय और वह स्वयं धर लिये जांय। यह सोचकर वह फिर वहाँ आये। पण्डित बेचारा साँसत में पड़ा हुआ व्याकुल और अधीर था। कहाँ घर से बाहर निकलकर धन कमाने आये। और धन कमाने पर यह दुर्गति हो गयी। दोनों दीन से गये पाँडे, हलुआ मिला न भाँड़े ! परन्तु करता क्या ! हाथ-पाँव जकड़े हुये हैं। हिलने डोलने की शक्ति नहीं है।

डाकू आये। एक ने कमर से तलवार निकाली। "इसको मारकर यहाँ ही ढेर कर दो।" किसी को कानों कान डाका मारने का पता न लगने पाये। दूसरे ने कहा—कि इसको इसी भाँति वृक्ष से बंधा रहने दो आप ही मर जायेगा।' परन्तु पहिला डाकू उसके प्राण लेने पर ही तुला हुआ था। पंडित

मन ही मन भय से काँप रहा था। "बुरी बला में फंसे। अब की बार यदि प्राण बच जाँय तो घर से बाहर निकलने का नाम न लूँगा।" परन्तु इस आपत्ति से छुटकारा कैसे मिले।

डाकू परस्पर परामर्श करने लगे। पहिला तो प्राण लेने ही को उत्तम समझता था। दूसरा बंधा रहने में कुशल समझता था। पहिला बोला "कोई आकर इसको छुड़ा देगा और तब यह भाँड़ा फोड़ेगा खोज होने लगेगी और लेने के देने पड़ेंगे पण्डित ने बेकसी की अवस्था में जिव्हा खोली—"भाइयो सब कुछ करो परन्तु मुझको जान से न मारो। जान बहुत प्यारी है। मैं कंगाल ब्राह्मण हूं। गुरू ब्राह्मण को कोई नहीं मारता। मारने का बड़ा पाप होता है। मुझे छोड़ दो। मैं घर चला जाऊँगा। लूटे जाने का समाचार किसी को भी न सुनाऊँगा।"

डाकुओं ने कहा—"परन्तु तेरी बात को सुनता और मानता कौन है। एक तो तू पढ़ा लिखा मनुष्य, दूसरे पण्डित! एक कड़आ करेला, दूसरे नीम चढ़ा। संसार में मनुष्य सबका विश्वास करे परन्तु पढ़े लिखों का कभी विश्वास न करे। यह दुष्ट महादुखदायी होते हैं। न्याययय में जिरह के ऐसे प्रश्न करते हैं कि प्रत्येक अभियुक्त को खाया विष उगलना पड़ता है ना भाई ना! हम तो तुझ बिना मारे हुये न छोड़ेंगे।"

बेचारे पंडित की कुछ न पूछो, काटो तो शरीर में लहू नहीं। वह मन ही मन देव पित्र मनाने लगा।

तीसरा डाकू अब तक न बोला था। उसने अवसर पाकर कहा यह जाति का ब्राह्मण है। ब्राह्मण के मारने की बड़ी हत्या लगती है। यह स्वयं स्वीकार करता है कि किसी को अपना हाल न बतायेगा इसको बंधा हुआ छोड़ दो दूसरा कोई आकर खोल देगा। हम व्यर्थ क्यों ब्राह्मण की हत्या करें।

माल तो हमारे हाथ आ ही गया है। इसके प्राण लेने से क्या लाभ है ?"

तीनों डाकू लोकतन्त्र पद्धति और बहुमत के सिद्धान्त के पक्ष में थे जब दो की एक सम्मत्ति हो गयी तब तीसरे को भी चुप रहना पड़ा, यद्यपि वह हृदय से उसके प्राण-लेने पर तुला था। अन्त में वे वहाँ से चले गये और ब्राह्मण को वहाँ ही छोड़ गये।

संध्या समय हुआ, न दाना न पानी, व्यर्थ की व्याकुलता तथा अधीरता और फिर पराधीनता का दुःख। उस घने जंगल की ओर एक यात्री भी न आया। क्योंकि वह स्थान कंटकमय प्रसिद्ध हो चुका था। केवल भूले भटके यात्री उस ओर से जाते थे और डाकुओं के हाथ से मारे जाते थे।

जब संध्या हुई, वही दयालू डाकू वहाँ आया। ब्राह्मण तो डर गया कि यह बिना मारे हुये न रहेगा। परन्तु उसने कहा—"सुनो ब्राह्मण देवता ! मैं तुम्हारे प्राण लेने नहीं आया किन्तु छुड़ाने तथा तुमको तुम्हारे घर पहुंचाने आया है। भयभीत न हो, ढाढ़स करो। मेरे साथियों का वश चलता तो वह तुम्हें अवश्य मार डालते। मैं अन्य प्रकार का डाकू हूं।

यह कह कर उसने उसके हाथ-पाँव खोल दिये। कुछ खाने पीने को भी दिया और रातों रात उसको जंगल से बाहर कर उसके नगर के समीप छोड़ने आया। इतने में सूर्य भगवान की लाली आकाश मण्डल पर प्रकट हुई डाकू विदा होने लगा।

ब्राह्मण ने कहा—"भाई तुमने मेरे प्राण बचाये हैं मेरे घर चलो मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँगा और तुम्हें भोजन कराऊँगा।'

डाकू हँसा—"मुझे तुम्हारी कृतज्ञता की आवश्यकता नहीं,

इतना मुझको तुम्हारा विश्वाश नहीं है। पढ़े लिखे पंडित का विश्वास हम डाकू नहीं करते। तुमको तो स्वयं दान दक्षिणा की पड़ी रहती है भला तुम हमको क्या दोगे। अपना पेट पालना ही कठोर होता है और फिर ब्राह्मण ने किसी को क्या दिया है ? यदि तुम क्षत्री होते तब भी विश्वास किया जाता। क्योंकि राजपूत अपने वचन के पक्के होते हैं। ना बाबा ! मैं तुम्हारा भूलकर भी विश्वास न करूँगा। यह क्या कम है कि तुम्हें छुड़ाकर घर के समीप पहुंचा दिया। अब किसी प्रकार का भय नहीं है। जाओ नाक की सीध पर अपने घर चले जाओ और मैं यहाँ से विदा होता हूं।

यह कह कर वह वहाँ से भाग निकला। ब्राह्मण को विपत्तियों का अनुभव हो गया, घर आया और जैसा कंगाल था वैसा ही कंगाल का कंगाल बना रहा।

## कहानी की व्याख्या का अंग

यह कहानी सुनाकर कबीर साहब बोले—"सुनो सर्वाजित तुम वही ब्राह्मण हो। तीन डाकुओं ने तुम्हारा माल असवाब छीन लिया और तीसरा डाकू तुम्हें मेरे चरणों में पहुंचा गया है और यह मेरे चरण कमल तुम्हारा घर है।'

सर्वाजित पण्डित ने बड़े आश्चर्य में होकर पूछा—"प्रसंग कुछ और कथा कुछ और। मैं तो इसको कुछ भी न समझा।

कबीर साहब ने कहा—"ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म का अंश और ब्रह्म का पता जानता हो। वह अंश किसी प्रकार शरीर में आकर पढ़ा लिखा चतुर हुआ। कथा सुनाने पराये देश में गया जो इन्द्रियों का स्थान है। यहाँ उसने इन्द्रियों की कमाई का धन द्रव्य प्राप्त किया। घर को ओर चला। तुमने भी इसी भाँति कियाथा और सारेब्राह्मण ऐसा ही करते हैं क्या तुमनहीं

देखते कि पढ़े लिखे ब्राह्मण इन्द्रियों के रस में लंपट रहते हैं। उनको पेट भर हलुवा पूरी खिला दो और वह सन्तुष्ट ही रहते हैं। तुमने सन्मान, प्रतिष्ठा तथा सफलता प्राप्त की। अहंकार उत्पन्न हुआ और उस अहंकार के अन्तर्गत कबीर पर छपा मारने निकले। इस अहंकार में तीन गुण होते हैं। तम, सत और रज। तीनों ने कस कर तुम्हें बांध लिया। सब कुछ छिन गया। तम की वृत्ति ने तमको मूढ़ बना दिया, यहाँ तक कि तुम्हारी माता ने कह दिया था कि सर्वाजित अपना नाम न रक्खो, सर्वाजित तो कबीर ही हो सकते हैं किन्तु मूढ़ता के वशीभूत तुमने उसकी बात न मानी और लड़ाई लड़ने और मुझको शास्त्रार्थ में हराने के लिये निकले। यह वृत्ति रजोगुण का अंग है। तुम अभिमानी बन उठ खड़े हुये। तम, रज और सत ने तुमको घेर लिया और कस कर तुमको बांध लिया। दो का रूप तो तुम समझ गये। एक ने तुमको मूढ़ बनाकर बाँधा। दूसरा रजोगुण मारने पर तुला हुआ था। अब रह गया तीसरा सतोगुण उसने अपने दयाभाव से तुमको उनके पंजों से छुटकारा दिलाया और मिथ्या अभिमान के कारागार से छुड़ाकर यहाँ लाया और यहाँ पहुंचाकर वह भी अब भागने ही को है। उसका नाम केवल इतना ही है इससे अधिक वह और कुछ नहीं करता। जहाँ इसने देखा कि घर समीप आ गया और सूर्य का प्रकाश निकलने को है वह भी तुमसे विदा हो जायेगा। यह तीन गुणों के तीन मुख्य कार्य हैं यह तीनों ही आत्मा पर पर्दा हैं जब तक यह पर्दा नकट जायेंगे तब तक निज रूप का ज्ञान न होगा। और डाकुओं ने जो बार बार पढ़े लिखे मनुष्यों पर लांछन किया था, उसका अर्थ समझते ही हो। पढ़े लिखे मनुष्यों की, किन्तु परन्तु, यदि करने की प्रकृति बन जाती है, वह विचार के निर्बल

अंगों तथा बुद्धि के भ्रम जाल में फंसे रहते हैं। और 'हमारे समान दूसरा कौन हैं' इस प्रकार मिथ्या मान में जकड़े रहते हैं

पढ़ लिख कर समझावहीं: मन नहिं धारे धीर।
रोटी का संशय पड़ा, यों कथ बहै कबीर ।।

तुम्हारा धर्म, कर्म, पूजा पाठ, कथा वार्ता किस कारण हैं सब रोटी के लिये है। पेट भरने के निमित्त तुम ऐसे स्वाँग बनाते हो। परमार्थ की तो तुम्हारे यहाँ चर्चा तक नहीं है। उल्टी सीधी समझाकर अपना काम सीधा करते हो। गुरू बन कर मन्त्र देते हो। कहीं बकरे को कटवाया, कहीं भैंसे का बलिदान दिलाया, कहीं नरमेध, कहीं अश्वमेध, कहीं गोमेध पर जोर देते हो। तुम्हारा यज्ञ और हवन सब पाखण्ड ही पाखण्ड है। पाखण्ड के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है और तुम्हारे इस पाखण्ड को तोड़ने के लिये मेरा प्राकट्य है। मित्र भाव से मेरे पास आओ, शत्रु रूप से मुझसे दाँव पेच से लड़ो। मैं हर प्रकार से तुम्हारे चेताने को तैयार रहता हूँ अनेक युक्तियों से परमार्थ का पाठ पढ़ाता हूं। अब तुमने तीन गुणों का रूप समझ लिया या नहीं ?

सर्वजित ने सिर को नीचा कर उत्तर दिया "समझ लिया। आप धन्य हो। आप सचमुच कबीर और परम पुरुष के अवतार हो।"

## गुरू तथा शिष्य का अंग [ क्र शः ]

कबीर साहब बोले—"ए सर्वजित ! मैं समझाने को तो सबको समझा रहा हूँ परन्तु जो मनुष्य शिष्य भाव को लेकर समझने आता है मैं उसको सच्चा जिज्ञासु मानता हूँ और उस से कोई भी गूढ़ तत्व गुप्त नहीं रखता हूँ।"

सर्वजित ने कहा—"मैं भी आपका शिष्य होना सहर्ष

कबीर साहब ने कहा—"अभी नहीं। तुम्हारे चेला होने में अभी देर है। तुम चेले के भाव को लेकर मेरे पास नहीं आये थे। तुम्हारा हृदय अब निःसन्देह बदल रहा है, कभी चेला बन जाओगे।"

सर्वाजित ने पूछा "चेले का भाव क्या होता है ?"

कबीर साहब बोले—"बड़े आश्चर्य की बात है कि शास्त्रों का ज्ञाता ऐसी निरर्थक और अज्ञानी जैसी बात करे। चेला जब गुरू के पास जाता है तो फल-फूल लेकर भेंट करता है। क्या तुमने इस व्यवहार के नियम का पालन किया ? तुम शास्त्रों का हथियार लेकर मुझसे दांव पेच खेलने आये थे। यह सच है कि तुमने हथियार डाल दिये, किन्तु शिष्य प्रथा के नियम का पालन नहीं किया। वरन् मैं तुमको शिष्य मानने में अस्वीकृत न प्रकट करता। ऋषियों के समय से यह नियम चला आता है कि जब चेला गुरू के समक्ष जाता था तो और नहीं तो यज्ञ के लिये ही एक मुट्ठी लकड़ी चुनकर लाता था और उसको भेंट चढ़ाता था। इसका केवल इतना आशय समझा जाता था कि मैं चेला रूप से सेवा में उपस्थित हुआ हूँ और आपका गुरू रूप से सन्मान करता हूँ।"

खाली साध न भेंटिये, सुन लीजे सब कोय।
कहै कबीर वह भेंट धरि, जो तेरे वित्त होय॥

सर्वाजित बोला—"सच है, मैंने इस नियम का पालन नहीं किया।"

कबीर साहब ने कहा—"न केवल गुरू के साथ ही ऐसा व्यवहार किया जाता है किन्तु जब कोई राजा के दरबार या किसी इष्ट मित्र तथा सम्बन्धी के घर जाय तब भी इस व्यवहार का विचार रखना चाहिए। इससे केवल सन्मान का भाव प्रकट होता है और पारस्परिक सम्बन्ध का विकाश होता है

परमार्थ तथा स्वार्थ के व्यवहार में भी इस नियम को कदापि
न भूलना चाहिए, नहीं तो दूसरी ओर से सदैव उदासीनता
का व्यवहार किया जायेगा और सफलता देवी के दर्शन का
सौभाग्य न प्राप्त होगा। यह परमार्थ की पुस्तक का बाहरी
कवर पृष्ठ है। तुमने इस भांति अपनी ओर मेरे आकर्षित
करने का उपाय नहीं सोचा। मैं कैसे कहूं कि तुम मेरा चेला
होने आये हो। सुनो ऐ सर्वाजित बिना भेंट के कभी गुरू के
पास आने का साहस न करना चाहिये। यहाँ किसी बात की
कमी नहीं है कमी है तो यह कि मैं प्रेम का भूखा हूं। प्रेम
दो और मैं तुमको अपने समान कर लूंगा। 'मुझ सरीखा हो
रहे, सब कुछ तेरे पास।' और यदि प्रेम की भेंट नहीं चढ़ाते
हो तो फिर मैं तुमको कैसे अपने समान करूँ। इसी कारण
मैंने तुमसे कहा है कि दर्पण के पास जाकर पहिले विशेष ढंग
का रूप बना लो। तब उसी भाँति समझ लो तब काम बने।
जो समझते हैं वह समझते हैं। जो नहीं समझते हैं उनको कोई
क्या समझाये। और तुमको अधिकार भी है कि प्रश्न करते
चलो मैं उत्तर देता जाऊंगा। बिना प्रश्नोत्तर के तुम में शिष्य
भाव कैसे प्रगट होगा?"

## ईश्वर का अंग

सर्वाजित बोला—"ईश्वर के सम्बन्ध में शास्त्रों की भिन्न
भिन्न सम्मतियां है। आपका क्या कथन हैं?"

कबीर साहब ने पूछा—'पहिले तुम बताओ कि शास्त्र
ईश्वर के विषय में क्या कहते हैं?'

विचार कर लिया जाय कि फिर अधिक बातचीत की आवश्यकता ही न रहे। मैं किसी को बातों में फंसाकर दुःखी करने नहीं आया किन्तु सार तत्व को सार तत्व की दृष्टि से दिखाने आया हूँ। मैं किसी मुख्य सिद्धान्त, वाणी, वचन तथा सम्पति पर अन्ध विश्वास के लिये नहीं कहता, क्योंकि यह सम्भव है कि दृष्टि की विशेषता के कारण तुम उसके यथार्थ रूप न मानो। इधर विश्वास मात्र से तुम्हारा हृदय भावनाओं की कठिन बेड़ियों के बन्धन से जकड़ जायेगा और तुमको कुछ भी न लाभ होगा और जिस तत्व के ज्ञान कराने के निमित्त मैंने सतसंग की नींव डाली है उसके प्रचार का मन्तव्य एकदम नष्ट हो जायेगा अवसर तो मैं तुमको दे ही रहा हूँ तुम अपने दृष्टिकोण से शंकाऐं उत्पन्न करो। मैं उत्तर देता चलूंगा। और क्या वह सुलभ नहीं है?"

सर्वाजित ने कहा "एक ही समय में ऐकत्ववाद और अनेकवाद की सम्भावना नहीं होती?'

कबीर साहब बोले -"यह किसी स्थिति तक तुम्हारे दृष्टिकोण से ठीक है किन्तु यह केवल एक ही स्थिति तक है। स्थितिबद्ध की दशा से तुम इसको ठीक कह सकते हो किन्तु स्थिति की बाह्य दृष्टि के सामने इसके रूप में अन्तर पड़ जायेगा जो ईश्वर को कृत्रिम, सगुण तथा गुणात्मक मानते हैं वह गुण तथा विशेषण के मण्डल से बाहर नहीं जातेऔर इस-लिये वह गुण वर्ण, निर्गुण तथा तत्व के भाव को नहीं समझते गुण या विशेषण बन्धन तथा आधीनता का नाम है। निर्गुण तथा निज रूप को मुक्त कहते हैं अतएव यदि इन शब्दों पर विचार करो तो अभी पर्दा हट जाय और तुमको एक में अनेक तथा अनेक में एक का खेल दृष्टिगोचर होने लगे।"

सर्वाजित बोला - "एकत्ववाद तथा अनेकवाद में

आपकी बातों में ईश्वर के रूप झलक पड़ने लगे। आप सैन-बैन द्वारा वार्तालाप करते हैं। वास्तव में सैन-बैन के समझने वाले संसार में कम होते हैं। इतने पढ़ने लिखने पर भी मैं रहस्य को नहीं समझता था। अब उनकी समझ आने लगी।'

कबीर साहब ने कहा

पढ़ा गुना सोचा बहुत, मिटी न संशय सूल।
कहै कबीर कासों कहूं, यह सब दुःख का मूल ।।१।।
सिद्ध भया तो क्या भया, चहुं दिसि फूटी बास।
बीज अंकुर जारा नहीं, फिर जमेगी घास ।।२।।
कबीर कोई यों कहे, कान ले गया काग।
कान टटोल न देखिया, काग संग रहा भाग ।।३।।
कंकड़ पत्थर जोड़कर, मसजिद लिया बनाय।
ता चढ़ मुल्ला बाँग दे, बहरा हुआ खुदाय ।।४।।
मुल्ला क्यो तू बाँग दे, खुदा न बहिरा होय।
जिस कारण तू बांग दे, दिल ही अन्दर सोय ।।५।।
मन्दिर में हिन्दू गये, भजन भाव दे चित्त।
जो घट अपने रम रहा, तासों नहिं कछु हित्त ।।६।।
तुर्क मसीते हिन्दू मन्दिर, आप आप को धाय।
अलख पुरुष घट भीतरे, ताको लखा न जाय ।।७।।

सर्वजित ने कहा—"आप निसंदेह सच्ची-सच्ची और खरी-खरी बातें कर रहे हो।"

कबीर साहब ने कहा—"मैं यह देखकर प्रसन्न हो गया कि तुम्हारे हृदय के दर्पण में मेरे भाव की छाया पड़ने लगी अब सार तत्व के समझाने में मुझे सुलभता होगी चूंकि तुममें शिष्य भाव आने लगा है। यदि तुम ईश्वर को गुणात्मक और कृत्रिम समझते हो तो संसार में असंख्य ईश्वर देख पड़ेंगे और यदि जाती (निजरूपी) समझते हो तो एक ईश्वर प्रतीत होगा और जब जात तथा गुण दोनों ही से दृष्टि को हटा लोगे तो

एक तत्व रह जायेगा और यह सब झगड़े स्वयं दूर हो जायेंगे और भ्रम का नाश हो जायेगा।"

सर्वाजित ने कहा—"कपिल मुनि ने ईश्वर को नहीं माना और हिन्दुओं में एक चारवाक् हुआ है जो ईश्वर को नहीं मानता क्या आपने कभी इनके सिद्धांत पर विचार किया है ?

कबीर साहब ने कहा "मैंने तो सब जान लिया है परन्तु इस प्रश्न से तुम्हारा क्या तात्पर्य है सो कहो।"

सर्वाजित बोला—"चारवाक् तो भला नास्तिक था उसका कहना ही क्या है ! किन्तु कपिल ऋषि जो साँख्य शास्त्र के निर्माता थे उनके सम्बन्ध में आश्चर्य होता है कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा है कि कोई ईश्वर नहीं है।

कबीर साहब बोले—"पहिली बात यह कि तुमने कैसे समझा कि कपिल को ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार है। संभव है कि किसी ने अपना विचार उनके सिर मढ़ दिया हो। यदि यह बात नहीं है तो जिस ईश्वर के सम्बन्ध में लोगों ने अपने कल्पित भाव बनाये हैं उसका खण्डन उनको स्वीकार होगा। तीसरे कपिल पुरुष को तो मानते ही है उन्हें कपिल का शिष्य पातण्जलि ईश्वर को विशेष पुरुष कहता है। योग साँख्य ही की तो एक शाखा है। चेला अपने गुरू की वाणी का खण्डन नहीं करता। इसने रहस्य है जिसको साधारण जनता नहीं जानती। और इसको भी जाने दो। कौन सी श्रुति स्मृति है जिसमें द्वन्द पाने का विचार न हो और कौन सा ऐसा ऋषि है जो अन्यान्य ऋषियों के विचारों का विरोधी नहीं। इसी भाँति और कौन सा धार्मिक ग्रन्थ है जो मतभेद की त्रुटि से रहित* हो रहा चारवाक् का विषय ! मैं तो उसे भी नास्तिक

---

*श्रुतयो विभिन्ना स्स्मृतयो विभिन्ना, नैको मुनिर्यस्य मतं प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्, महाजनो येन गतः स पंथा ।।

नहीं कहता क्योंकि वह प्रकृति के अस्तित्व को तो मानता ही है और जब कोई किसीएक बात को मानता है तो वह नास्तिक नहीं हुआ। वह तो एक प्रकार का सच्चा आस्तिक है। मुझे तो एक भी नास्तिक प्रतीत नहीं होता। अपनी अपनी सम्पत्ति अपना अपना विचार। तुम किस प्रकार किसी को नास्तिक होने का निर्णय करते हो? संसार मतभेद का मण्डल है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति की सम्मितियाँ पृथक हैं। किसी को क्या अधिकार है कि मतभेद के कारण किसी को लाँछन करे। सिद्धान्त के समझने में मतभेद का होना आवश्यक है। इससे बचाव नही है और न ही हो सकता है। दृष्टि को ऊँची करो तब सार तत्व का ज्ञान हो संकीर्ण दृष्टि वाले ही अपनेविपक्षी को बुरा भला कहते हैं। हाँ, जहाँ पाखण्ड है और लोगों को धोखा दिया जा रहा है वहाँ यदि मेरे समान खण्डन करो तो कोई आपत्ति नहीं।"

फिर कबीर साहब ने कहा—"तुम पण्डित हो यह तुमको जानना चाहिए। यदि नहीं जानते तो सुनो। जो कर्म करता हुआ अकर्मक है जिसको अच्छा बुरा फल नहीं होता इत्यादि इत्यादि वह ही पुरुष विशेष है।"

सर्वाजित बोला—"तो कपिल ने ऐसा पुरुष नहीं माना।

कबीर साहब ने कहा—"यदि नहीं माना है तो न माने उसके मानने या न मानने से हानि ही क्या होती है? मैं कोई साँख्यवादी तो नहीं हूँ जो अन्ध विश्वास से किसी एक पक्ष पर अड़ा रहूं। न मानने में सम्भव है कि उन्होंने भूल की हो।'

सर्वाजित ने कहा- "उसी भूल को तो मैं जानना चाहता हूं।"

कबीर साहब ने उत्तर दिया—"किसी की भूल का जानना तो न मन्तव्य है न उससे लाभ है। लाभ तो सच्चाई के जानने

में है। बिचारपूर्वक मेरी बातों को सुनो। प्रत्येक जीवधारी में अवस्थाऐं कम से कम होती हैं। शरीर, मन, आत्मा। तुम में भी यह तीनों विद्यमान हैं। एक कीड़े में भी है। ब्रह्मा से लेकर चींटी तक कोई जीव इनसे खाली नहीं है। और इन तीनो का अभिमानी अर्थात् उनसे सम्बन्ध रखने वाला होता है, वही उनका अधिष्ठाता कहलाता है। जो जिस पर आश्रित हो वह आश्रय देने वाले के आधीन है। आश्रय देने वाले ही को अधिष्ठाता कहते है। तुम अपने शरीर में रहते हो। तुम में मन है, तुम में आत्मा है, इसलिये संयुक्त दशा के विचार से तुम अधिष्ठाता हुये। तुम पिंड के अधिष्ठाता हो। पिंड तुम्हारे आधार पर है। जिस प्रकार यह तुम्हारा पिंड है उसी प्रकार यह बड़ा ब्रह्माण्ड भी बड़ा पिण्ड है। और जब उस ब्रह्माण्ड को स्थिति मान ली गयी तो फिर उस ब्रह्माण्ड का अधिष्ठाता उसका धनी तथा मालिक हुआ और इस धनी और मालिक को ईश्वर कहते हैं। अब इस भाँति समझो कि ब्रह्माण्ड का होना तो किसी न किसी प्रकार प्रमाणित हो गया तुम्हारा पिंड ब्रह्माण्ड की नकल है सत् शास्त्र सदैव से यह कहते चले आ रहे हैं और सब लोग भी ऐसा ही कहते हैं और जब यह सच्ची बात मानी गई तो ब्रह्माण्ड की दृष्टि से ब्रह्माँड के धनी, अधिष्ठाता और मालिक का होना सिद्ध हो गया जन-साधारण इसी को ईश्वर कहते हैं।

सर्वजित ने पूछा "इसमें साधारण और असाधारण का मतभेद कैसा ? इन शब्दों से तो प्रकट है कि ईश्वर के विषय में या ईश्वर के विश्वास, निष्ठा के सम्बन्ध में साधारण जनता का विश्वास और है तथा विशेष मनुष्यों का दूसरा है।

कबीर साहब ने कहा—"बात तो ऐसी ही है और तम

इसको जानते भी हो परन्तु जान बूझकर ऐसा प्रश्न कर रहे हो। जिस मनुष्य ने शास्त्रों का अध्ययन किया है उसके लिये ऐसे प्रश्न करना अनुचित है।

सर्वाजित बोला "भगवन ! सच्ची बात तो यह है कि यद्यपि मैंने शास्त्रों को बार बार पढ़ा है परन्तु जिस निराली युक्ति से आज आपने ईश्वर का अस्तित्व समझाया है वैसी उनमें किसी में भी दिखाई नहीं देती। इसलिये अब मैं बालक बनकर प्रारम्भिक शिक्षा की कक्षाओं में प्रवेश करता हुआ आप ही के दृष्टिकोण के अनुसार असली स्थान तक पहुंचना चाहता हूं। शास्त्रों से मेरी शंकाऐं तथा भ्रम किंचित दूर नहीं हुये थे मैं केवल अहंकारी होकर दार्शनिक युक्तियों से सबको परास्त करता रहा हूं। आज आपके केवल एक इसी उदाहरण से समझ गया कि आपका ज्ञान षट शास्त्र वालों के ज्ञान से बहुत ही अधिक दिव्य है उनमें से एक वेदान्त है जो निःसंदेह स्वतन्त्रता से प्रत्येक प्रश्न पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करता है किन्तु वह प्रयत्न भी निरर्थक जाता है इसलिये कि वहाँ पर भ्रम उत्पन्न हो जाता है। कहीं मिथ्यावाद का प्रसंग है, कहीं आभास वाद का है। कहीं मायावाद का है। अन्त में सब मिथ्या होकर मिथ्या ही में लय होते हैं। आपकी संक्षेप वार्ता में बड़ी व्याख्या हैं। आपने न कहीं मिथ्या शब्द की सहायता ली, न जगत को भ्रम बताया ! न ईश्वर और वेद में से किसी को मिथ्या कहा, किन्तु इस भाँति सफाई से मूल तत्व की झलक दिखा दी है कि मन सुनते ही मान गया कि आप में वास्तविक तत्व है। इसलिये आप मेरे मूर्खता के प्रश्न का विचार न करें। मुझको अबोध बालक समझकर अपना ज्ञान प्रदान करें।

प्रसन्न हो गये—"सर्वाजित !

तुम में सच्चाई का प्यार है, इसलिये इस भाँति स्वीकार करते हो वरन अभिमानी पण्डित कदापि मेरी निराली युक्ति को न मानता। तुम पूछते चलो मैं उत्तर देता चलूँगा। किन्तु यहाँ तुममें एक भ्रम है वह मैं तुम्हारे हृदय से निकाल देना आवश्यक समझता हूँ। वेदान्त वादियों में सब आश्चर्य बराबर कहते आये है कि जब तक किसी ने चौ साधन नहीं किया है तब तब वेदान्त के विषय के समझने के योग्य नहीं होता और उस समय तक उसको गुरू से प्रश्न करने का भी अधिकार नहीं होता। बिना चौ साधन करने के कारण लोग वेदान्त को आप ही आप पढ़ने लगते हैं। तत्व के समझने में भूल करके अहंकारी बन जाते हैं और आपा मती या आपा पन्थी बन जाते हैं। यह वेदान्ती कैसे हुए? वरन यदि यह चौसाधन-कर लिये होने तो असलीसमझ-बूझ से बंचित न होते। इसमें वेदान्त का क्या दोष है? रही मेरे हंसों की व्यवस्थां। मैं उनको सुगमता से सतसंग में चौ साधन के दरजों से पार करा देता हूँ। जैसी कि तुम्हारी दशा इस समय स्वयं हो रही है। ब्रह्मचर्य के तप में चौ साधन का रहस्य गुप्त रहता है। वह मेरे यहाँ केवल प्रतिदिन के सत्संग तथा कथा कीर्तन से प्रत्येक को प्राप्त हो जाता है।"

"तुमने ईश्वर के विषय में प्रश्न किया है कि साधारण तथा असाधारण को समझ में क्या अन्तर है? अब उसके विषय में सुनो —ब्रह्माण्ड की तीनों अवस्थाओं का संयुक्त रूप सामने रखकर साधारण मनुष्य ईश्वर, ईश्वर के शरीर, ईश्वर मन, ईश्वर के आत्मा जब को मिला जुला कर ईश्वर का विश्वास दृढ़ करते है। यह सगुन उपासना है और विशेष मनुष्य केवल ईश्वर के आत्मा ही को लक्ष बनाकर उसी को

का आधार मानते हैं यह निर्गुण उपासना है। यह विशेष मनुष्य का मार्ग है मैं न तो किसी को सगुण में फंसाता हूं, न निर्गुण में, किन्तु अपनी एक विशेष युक्ति से उनकी दृष्टि को ऊँचा कर असलियत का पाठ पढ़ाता हूं जिसके कारण मेरे हन्स भ्रम में नहीं पड़ते।"

सर्वाजित बोला—"सच है मैंने इस विषय को भलीभाँति समझ लिया। बहुत शुद्धता आ गयी और आप की इसी एक बात से आस्तिक और नास्तिक का भेद समझ लिया, जो वर्षो तक शास्त्रों के अंध कूप में पड़े रहने से समझ में न आता। वास्तव में नास्तिकता और आस्तकिता भी भ्रम ही भ्रम है। और भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"

## नास्तिकता और आस्तिकता का अंग

कबीर साहेब ने पूछा—"तुमने किसको आस्तिक और किसको नास्तिक समझा है ?"

सर्वाजित ने उत्तर दिया—"प्रभू ! जो लोग ईश्वर के शरीर को प्रकृति समझ कर उसी में अटक रहते हैं और आगे नहीं बढ़ते वह तो नास्तिक हैं। वह इसी प्रकृति के जगत ही को सब कुछ मानकर तुष्टी के दोषी होकर सार तत्व की ओर दृष्टि नहीं करते और आस्तिक इस प्रकृति को छोड़कर उसके स्वभाव को आत्मा मानते हैं। यह इनमें अन्तर है इनमें भेद कुछ नहीं है ? केवल शब्दों ही का झगड़ा है और दोनों व्यर्थ ही लड़ते झगड़ते है। आपकी दया से यह रहस्य मेरी समझ में आ गया और यह भ्रम अब चित्त से सदैव के लिये दूर हो गया। आप धन्य हैं। आप सरल शब्दों में गूढ़ तत्व समझा देते है, जिसका हमारे शास्त्रों में अभाव है।"

कबीर साहब मुस्कराये—"तुम सच कहते हो बात केवल

से खाली है उस कारण मुझे उनके भ्रम दूर करने के विचार उत्पन्न हुआ और मैंने सतगुरु स्वरूप में प्रकट होकर दोनों ही को चिताने का बोध अपने जिम्मे लिया जिससे किसी प्रकार उनमें मतभेद उत्पन्न न हो, क्योंकि मतभेद या भिन्नता अद्वैत-वाद के मार्ग में काँटा है और यह मतभेद दोनों को वास्तविक अद्वैतवादी बनने से रोकता रहता है। इधर वेदान्ती शब्दों के भ्रम जाल में उलझ कर अपने सिद्धान्त से दूर पड़ते है। उधर नास्तिक भी शब्दों के गौरख धन्धे में पड़कर तत्व के समझने में भूल करते हैं। यदि कोई अद्वैतवादी द्वैत के खण्डन पर आ गया तो वह अपने तर्क से स्वयं एकत्ववाद के विषय का खंडन करने लगा। यदि वस्तु एक ही है तो फिर झगड़ा किस बात का रहा। जब दो होते हैं तब एक दूसरे में खटपट होती है। और जब दो नहीं है तो फिर तुम किसका खण्डन करते हो। और किसका मण्डन करते हो। इसकी आवश्यकता कहाँ है। ऐकत्ववाद के विषय को सच्चा समझ कर उस पर लड़ना झग-डना उसका खण्डन हो गया। इनका व्यवहार स्वयं इनको द्वैतवादी बनाकर इनको अपने सिद्धान्त से दूर फेंकता है। यह इतना भी नहीं समझते कोई जानवर मनुष्य इनको समझाये भी तो कैसे समझाये।"

मेरा तेरा मनुवा कैसे यक होय रे।

मैं कहता हूँ आंखन देखी, तू कहता है कागज लेखी।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राखे उरझाव रे॥
मैं कहता हूं जागत रह्यो, तू जाता है सोय रे।
मैं कहता निरमोही रह्यो, तू जाता है मोह रे॥
जुगन जुगन समझावत हारा, कही न मानै कोय रे।
तू तो रंडी फिरे बिहंडी, सब धन डारा खोय रे॥

सतगुरु धारा निर्मल बहती, वा में काया धोय रे।
कहहीं कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होय रे ॥

व्याख्या (३) रण्डी, व्यभिचारिणी, माया (प्रकृति-वादी) द्वैतवादी, भेदवादी इत्यादि इत्यादि।

ऐ सर्वाजित तुम बड़े भाग्यवान हो कि लड़ाई झगड़े के सिलसिले में सन्तों के सतसंग में आ गये हो और तुम्हारा यह भ्रम अब सदैव के लिये दूर हो गया।

## वेद का अंग

सर्वाजित ने कहा—"भगवन! नास्तिकता और आस्तिकता का अंग तो मैंने आज भली भाँति समझ लिया अब एक बात और रह गयी है। मनु जी अपने धर्म शास्त्र में कहते हैं कि ईश्वर को न मानने वाला नास्तिक नहीं है किन्तु वेद को न मानने वाला नास्तिक कहलाता है। पहले वाक्य के शब्द तो मेरे अपने है दूसरा वाक्य मनु जी का है। 'नास्तिको वेद निन्दकः' इसमें क्या रहस्य छिपा हुआ है? इसकी भी लगे हाथों व्याख्या कर दीजिए। यह भ्रम मुझको बहुत सताया करता है। क्योंकि मैं देखता हूँ कि कोई कोई दर्शन शास्त्र ईश्वर का खण्डन करता हुआ भी वेद का खण्डन नहीं करता किन्तु अपनी युक्ति का प्रमाण वेद ही से लाता है।"

कबीर साहब ने पूछा—"कौन दर्शनाकार ईश्वर का खंडन करता है?"

सर्वाजित बोला—"हमारे यहाँ और कई दर्शनों के अतिरिक्त छः दर्शन माने गये हैं। न्याय, वैशेषिक, योग, उत्तर-मीमाँसा, पूर्व मीमाँसा और साँख्य। इनमें से पहले तीन तो ईश्वर वादी हैं और ईश्वर को सिद्ध करते हैं। पूर्व मीमाँसा कर्म को प्रधान मानता है यद्यपि स्पष्ट शब्दों में ईश्वर का

खण्डन नहीं करता किन्तु दबी हुंयी वाणी से वह भी नहीं स्वीकार करता। रहा उत्तर मीमाँसा जिसे हम वेदान्त कहते हैं, वह ईश्वर को मिथ्या और कल्पित बताता हैं और साँख्य तो खुले रूप से कहता है कि ईश्वर किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता जैसा कि मैं पहले भी कह चका हूं।"

कबीर साहब ने कहा "तुमने फिर पंडिताई का झगड़ा छेड़ दिया। सुनो— अभी तक तुमने वेदों की असलियत (मूल तत्व) को नहीं समझा। वेद नाम है ज्ञान का। जो मनुष्य खण्डन करेगा वह तथ्य को कैसे समझ सकेगा ? जब ज्ञान की नींव ही नहीं रही तो फिर उसका महल कैसे बनाया जायेगा एक बात तो यह है। दूसरी बात यह है कि वेद हिन्दुओं की सामाजिक व्यवस्था की प्रणाली (नियम) है धार्मिक विश्वास चाहे जैसे हों उनसे किसी अन्य व्यक्ति को हानि नहीं पहुंचती अपना-अपना विचार है परन्तु सामाजिक व्यवस्था के नष्ट कर देने से न तो फिर वह समाज ही स्थिर रहता है न मनुष्य नियम का पालन ही करते हैं। जब समाज और नियम न रहा तो फिर हिन्दुओं का जाति गौरव जो उनको अन्य जातियों के समक्ष महत्व दिलाता रहता है बिल्कुल नष्ट हो गया। इसलिये ऋषियों ने इन चार वेदों के आधार पर हिंदू जाति की नींव स्थापित की थी। सनातन से हिन्दू वेदों के सामाजिक नियमों का पालन करते आ रहे हैं और उन्ही के सहारे जीवित हैं और उनके जाति, गौरव की दृढ़ता के मुख्य साधन बने हुंये हैं। संसार में ऐसा कोइ दल, जाति तथा सम्प्रदाय नही है जिसने सामाजिक व्यवस्था की दृढ़ स्थापना के निमित्त उसे नियमवद्ध न किया हो। फिर जब प्रत्येक स्थान पर यही दशा है तो फिर वेदों का सामाजिक नियम जो सबसे उत्तम श्रेष्ठ तथा पवित्र है उसको व्यर्थ में क्यों

हानि पहुंचाई जाय ? जहां जिस समाज में जाओगे उनके नियमों के पालन करने के लिये बाध्य किये जाओगे। इससे तो कहीं भी छुटकारा नहीं है और सिवाय हिन्दुओं के शेष अन्य जातियों का संस्कार इतना प्रौढ़ नहीं हैं हिन्दुओं में सब से अधिक जीवन है। दूसरे पानी के बुलबुले के समान उत्पन्न हो होकर मरते खपते रहते हैं। तुमने पुराण पढ़े हैं। उनसे स्पष्ट प्रकट है कि वेदों को राक्षस और असुर अनेको बार छीन ले गये और विष्णु ने बार-बार उनको वापिस दिलाया और हिन्दू जैसे पहिले थे अब भी वैसे ही हैं फिर क्यों वेदो का खण्डन किया जाय। इसके अतिरिक्त वेद कभी तुम्हारे धार्मिक विश्वास तथा धार्मिक विचारों में हस्तक्षेप नहीं करते और न बाधा करते हैं। तुम चाहे जिस सम्प्रदाय का अनुसरण करो तुम्हें हर समय उसकी पूर्ण स्वतन्त्रता है परन्तु सामाजिक तथा जाति के प्रचलित नियम भंग न हों इसकी स्वतन्त्रता ऋषियों ने हिंदुओं को नहीं दी। वह धार्मिक रीति से स्वाधीन हैं। केवल सामाधिक रीति से साधारण बन्धन के आधीन हैं। यह दशा अन्य जातियों की नहीं हैं। उनको सामाजिक स्वाधीनता है किन्तु धार्मिक विषय में स्वाधीन नहीं हैं इसलिये धार्मिक प्रश्न पर रक्तपात करते रहते हैं। देखो ऋषियों ने तुमको विचार वृद्धि की दृष्टि से कितना स्वतंत्र बना रक्खा है। यदि थोड़े से बन्धन तथा नियम सामाजिक उपर्युक्त समझ कर लगा दिए तो उससे तुमको क्या क्षति पहुंची ? कुछ न कुछ बन्धन का विचार तो प्रत्येक समाज या जाति को करना पड़ता है फिर तुम थोड़े से बन्धन और नियम से क्यों घबराते हो। हाँ, यदि तुम्हारे भावो तथा श्रद्धाओं की स्वतन्त्रता छीनी जाती तो निसन्देह महान क्षति पहुंचती और कदाचित तुम आत्मिक उन्नति भी नहीं कर सकते। इसी कारण मनु ने

कहा है कि वेदों की निन्दा करने वाला ही नास्तिक है। यह दूसरी बात है। तीसरी बात यह है कि वेदों के मन्त्रों में हर प्रकार के विचार मौजूद हैं। जहाँ तक सोचा जाता है वह एक भण्डार है जिसकी व्याख्या करने से प्रत्येक विषय पर प्रकाश पड़ता है और इसी कारण उनको ज्ञान भण्डार कहा जाता है। हाँ, पंडित इत्यादि यदि उनके समझने में भूल करते हैं तो यह उनका दोष है। सनातन से यह वेद कामधेनु गाय की उपमा पाते चले आ रहे हैं। जो उनसे माँगो वह दे देते हैं या यों समझो वह विद्या के दर्पण है। जो मनुष्य विशेष विद्या का शौक लेकर जिस रूप में उस दर्पण के सामने खड़ा होगा वह उसका रूप उसी प्रकार दिखा देगा। दर्पण को देखकर विवेकी पुरुष अपना रूप व आकृति को सँवार लेता है। दर्पण को नहीं तोड़ देता। यदि उसको तोड़ देगा तो फिर किसमें अपना रूप देखेगा। इसी कारण वेद की निन्दा और खण्डन करने का प्रयत्न महान भूल है। अब तुम वेदों का रूप समझ गये होंगे।'

सर्वाजित को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कहने लगा 'भगवन मैंने तो यह सुन रखा था कि आप वेदों का खंडन करते हैं परन्तु यहाँ तो और लीला दिखाई दी है आप वेदाभिमानी लगते हैं

कबीर साहब बोले -"मैं अभिमानी वेदाभिमानी नहीं हूं। मैं दर्पण बनकर प्रत्येक वस्तु को उसके रूप में दिखा देता हूँ मुझे किसी के खण्डन मण्डन से काम नहीं है। हाँ, जब प्राणी को बहकता देखता हूं तो परमार्थिक दृष्टि से उसको दृष्टि को ऊँचा कर देता हूं। और वहाँ सच्ची-सच्ची बात सुनाता हूँ। जिससे कोई भ्रम में न पड़े। जिसने तुमसे यह कहा कि मैं वेदों का खण्डन करता हूं उसने केवल मेरी बातों की ओर ध्यान दिया है जो यह कहता है। [ शेष अगले अंक में ]

## सरदारबाई

यह पतिव्रता वीरांगना राजधानी पाटन के निकटरानीपुर की रहने वाली थी। वहाँ कल्याणवंश का राजा क्षेमराज राज करता था। वह उसकी पुत्री थी। उस समय गुजरात दिल्ली राजधानी सूबे के आधीन था। पर फिर भी गुजरात का उत्तरी भाग किसी अंश में आजाद समझा जाता था। क्योंकि यहाँ के बसने वाले मनचले राजपूत बादशाह के अधीन नहीं रहना चाहते थे पाटन में बादशाह की ओर से रहमतखाँनामी सूबेदार मुकर्रिर था। संयोगवश एक बार सूबेदार रानीपुर आया। राजा क्षेमराज ने उसका बड़ा आदर सत्कार किया। और यथासम्भव महमानी में कोई कमी न रक्खी। संयोगवश जब एक समय सूबेदार राजमहल में जा रहा था। सरदारबाई बाग में सैर कर रही थी। सूबेदार को देख कर उसने अपने मुख को ढक लिया। पर अकस्मात् वायु के झोंके से उसका मुख खुल गया और रहमतखां देखते ही उस पर मोहित हो गया। पहले इसका विचार रानीपुर से नहीं था। पर सरदार बाई के रूप और लावण्य ने कुछ ऐसा बेसुध बना दिया कि वह अपने विचार के विरुद्ध वहाँ ज्यादा ठहरने को विवश हुआ अब वह इस चिन्ता में रहने लगा कि सरदारबाई किस तरह उसके हाथ आये वह भली प्रकार जानता था कि क्षेमराज अपनी पुत्री के साथ कदापि न करेगा इसलिये उसने उसके पुत्र मूलाराज के साथ अपना याराना स्थापित किया और उसको अपने जाल में फाँस लिया। मूलराज सीधा और बेबकूफ भी था। संध्या समय जब वह रहमतखाँ से मिलने आया उसने उसको मदिरा पिला दी और जब वह बेसुध होने लगा उसके

पास कुछ न रहा तो रहमतखाँ ने हंसी-२ में कहा कि तुम अपनी बहिन सरदारबाइ को दाब पर लगा दो अगर तुम्हारी जीत हुयी तो उत्तर का सारा इलाका तुम्हें दे दूंगा वरन तुमको अपनी बहिन सरदारबाई का विवाह मेरे साथ करना होगा ।मूलराज बेसुधी की दशा में था। जुये की हार बुरी होती है। उसने इस बुरी शर्त को मान लिया। वाजी बदी गयी और जब पासा डाला गया फिर भी रहमतखाँ की जीत हुयी। अब जाकर कहीं राजकुमार का नशा किरकिरा हुआ। अपने किये पर मन ही मन पछताने लगा और अफसोस करने लगा पर क्या करता। मजबूर। काटो तो लोहू नहीं बदन में चेहरे का रंग बिल्कुल फीका पड़ गया।

अर्धरात्रि का समय हो चुका था। वह अपने कुटिल यार से रूखसत होकर अपने महल में आया। उसकी रानी रूपानदे देर से उसकी वाट देख रही थी। देर के बाद वह वहाँ पहुंचा सूरत शकल उतरी हुयी, औसान खता थे। रानी ने बातचीत करना उचित नहीं समझा और सो रहने की विनय की क्या कि नींद सदा भयभीत होने की दशा में एकमात्र औषधिसमझी जाती है पर मूलराज को नींद कहाँ। वह पलंग पर रात भर मछली के समान तड़फती रही। पलक से पलक न लगा नींद हराम हो गयी। रूपानदे अन्त में अपने धैर्य को कायम न रख सकी उससे पूछने लगी क्या बात है ? किस कारण आप इतने व्याकुल हैं ? और जब इसने आदि से अन्त तक सारा हाल कह सुनाया तो उसका भी माथा ठनका और वह खेद में चिंतित होकर कहने लगी कि आपने भारी गलती की। रहमतखाँ ने आपके भोलेपन का लाभ उठाया। आपको अधिकार ही क्या था कि बहिन को दाव पर लगाते। मूलराज क्या उत्तर दे ? चुप ! तीर कमान से निकल चुका था अब उसका वापसआना

कठिन था।

सूर्य के उदय होते ही रहमतखाँ ने थोड़े आदमियों के साथ एक पालकी मूलराज के महल में भिजवायी। क्षेमराज को कुछ खबर नहीं थी। पालकी देखकर आश्चर्य चकित रह गया पर रूपानदे ने सारा हाल अपनी ननद को कह सुनाया। और उसकी भाई के पासे में हारने का सब व्हौरा आद्योपान्त कह दिया। सरदारबाई के जी में उसी समय आग लग गयी वह कहने लगी भाभी ! भाई पागल हो गया है उसको न अपने कुल की मर्यादा का ध्यान है, न क्षत्रीवंश की परम्परा का इस कारण मेरी सम्मत्ति में उसके वचनों का कोइ महत्व नहीं मेरे ऊपर इसके अतिरिक्त पिता के जीते जी भाई का बहिन पर कोइ अधिकार नहीं। इसको क्या हक था कि वह बहिन को दाब पर लगा बैठा। मेरी जान में जब तक जान है मैं कभी अपने वंश को दाग न लगने दूँगी। दुनियाँ इधर की उधर हो जाय पर मैं कभी अवसर न आने दूंगी कि भाई की बुद्धिहीनता के कारण मेरे कुल को बट्टा लगे। इस समय अधिक वार्तालाप करने की अधिक शक्ति नही रही थी। वह उठी और सीधी अपने कमरे की ओर चली गयी। दरवाजे के सामने सुन्दर दर्पण मौजूद था उस पर निगाह गयी और अपने रूपस्वरूप की छाया देखकर कहने लगी धिक्कार है ! मेरी इस सुन्दरता रूप और लावण्य पर न रहमतखाँ ने बाग में मुझे देखा होता न आज यह महान आपत्ति हमारे कुल पर आयी होती।

जब क्षेमराज को यह हाल मालूम हुआ उसने पालकी को वापिस कर दिया और रहमतखाँ को कहला भेजा कि मूलराज को कोई अधिकार नहीं था कि वह तुमको इस प्रकार का वचन देता। इसलिये मैं इसकी बात को मानने वाला नहीं।

जिस समय पालकी वापिस गयी और सूबेदार ने राजा का सन्देश सुना उसकी क्रोधाग्नि भभक उठी। और उसी समय वहां से कूच करके राजधानी वापिस आया। और सेना के संग्रह करने में लग गया। क्षेमराज जानता था कि इस मामले का अन्त खून खच्चर होगा। पर अव्वल तो इसका राज छोटा दूसरे इसकी फौजी ताकत इतनी कम थी कि शाही सूबेदार के मुकाबले में उसको विजय पाने का अनुमान भी नहीं हो सकता था। परिणाम यह हुआ कि जब रहमतखाँ की भारी सेना रानीपुर पर चढ़ दौड़ी यह अपने किले दरियागढ़ में घिर गया किसी को साहस नहीं था कि मुसलमानों का मुकाबला करता रूपानदे ने अवश्य जी खोलकर शत्रुओं का मुकाबला किया। इसके साथ रानीपुर के राजपूत भी कट-कट कर मर गये और रूपानदे ने भी निहायत मर्दानगी से जान दी। कई घंटे तक संग्राम छिड़ा रहा अन्त में जब योद्धा मर खिप गये किला भी हमला करने वालों को न रोक सका। क्षेमराज, मूलराज और सरदारबाई तीनों बन्दी बना लिये गये। मूलराज कायर था इसने रहमत खाँ की बातों में आकर मुसलमानी धर्म इख्त्यार कर लिया। और सूबेदार ने इसको आजाद करके राजनीतिक चाल के बहाने कहीं और जगह भेज दिया। यह बूढ़े राजा-रानी और कुमारी सरदारबाइ बन्दी बनाकर पाटन लाये गये जहाँ एक-एक को अलग-अलग स्थानों में रखा गया और बड़ी चौकसी के साथ पहरे का बन्दोबस्त किया गया। रहमत खाँ सरदारबाई की सुन्दरता पर मोहित था। तीन दिन तक उसने में इसने कुछ छेड़छाड़ न की। चौथे दिन उसने कहला भेजा कि आज तुम्हारे डेरे पर आऊँगा। सरदारबाई की दशा विचित्र थी। पहले तो इसको अपने भाई की हरकत पर अति क्रोध था। पर अब चित्त में एक प्रकार का धैर्य और सन्तोष

आ गया था उसने सूबेदार के सन्देश का कोई उत्तर न दिया। और शाम से पहले वह सज-धज कर उसके इन्तजार में बैठी रही। जब रहमत खाँ आया। वह सनमानपूर्वक उठी और उसको सादर आसन दिया। जहाँ सूबेदार उसके रूप और लावण्य पर मुग्ध था तो अब उसके आदर और शिष्टाचार पर भी लटटू हो गया। इसने सरदारबाई से सुरा का प्याला माँगा। उसने बड़ी खुशी और प्रेम के साथ उसकी मदिरा-पान की भी सेवा की। वातचीत कुछ नहीं हुई। पर जब मुस्करा कर सरदारबाई उसको सुरा के प्याले पर प्याले झुकाती, वह बड़े प्रेम से सिर झुकाकर पीता जाता और झूम झूम कहता जाता:—

गर यार मय पिलाये तो फिर क्यों न पीजिये।
पुजारी नहीं मैं शेख नहीं विरहमन भी नहीं॥

परिणाम यह हुआ कि मदिरा ने उसको बदमस्त कर दिया और जब वह पूरे तौर पर बेहोश हो गया। सरदारबाई अपनी जगह से उठी। उसने वस्त्र पहने और पहरे वालों की नजर बचा कर एक ओर को चलती बनी। कई मील के फासले पर एक योगी का आश्रम था। सरदारबाई वहाँ पहुंची और सारे शरीर पर भस्म लगाकर उसने भी वहाँ योगिन का वेषधारण कर लिया। यहाँ रहते-रहते कुछ काल बीत गया। संयोगवश चन्द्रावति नगर का राजकुमार वीरसिंह जिसको सरदारबाई जानती थी आ निकला। उसने राजकुमारी को नहीं पहचाना पर सरदारबाई ने उसको देखकर सब हाल आदि से लेकर अन्त तक कह सुनाया। वीरसिंह को खुद भी सरदारबाई की तलाश थी। वह प्रसन्न होकर कहने लगा, 'आज से आठवें दिन में पाटन पर कब्जा कर लूँगा। बहतर है तुम भी हमारे

संग चलो। चन्द्रावति से जब हम सेना लेकर आयेंगे, शत्रुओं के छक्के छुड़ायेंगे। सरदारबाइ बोली नहीं तुम जाकर अपनी सेना ले आओ। मैं अम्बा भवानी पर इसी वेष में तुम्हारा इन्तजार करूँगी।

वीरसिंह तो उसी समय चन्द्रावति को चल दिया। पर अभी मुश्किल से दो-चार मील ही गया होगा कि सूबेदार के आदमियों ने सरदारबाई को पहचान लियां और वह उनके हाथ पड़ गयी। जिस समय यह पाटन से भागी थी आदमियो की अनेक टोली इसकी खोज में जगह-जगह को भेज दी गयी थी। और सूबेदार ने पता लगाने वालों को बहुत कुछ इनाम व इक्काम देने का वचन भी दिया था। इसकी खोज बड़े उत्साह के साथ की जा रही थी। सिपाहियों ने दीन दुःखी राजकुमारी को पशुओं के समान एक पिंजड़े में बन्द कर लिया। और पाटन की ओर चलते बने।

इश्वर की लीला कुछ विचित्र होती है। जब सिपाहियों का काफिला अम्बा भवानी के निकट होकर जा रहा था इनमें आपस में इनाम के बारे में झगड़ा होने लगा। गाली-गलौज की नौबत पहुंची। तलवारें म्यान से निकल कर आपस में चलने लगीं। और सब कट-कट कर मर गये। गाड़ी वाला शेष रहा था, उसने सोचा, चलो अच्छा हुआ। सारा इनाम मुझको ही मिल जायेगा पर बेचारा थोड़ी दूर ही गया होगा कि एक भयानक चीते ने झपटकर उसका काम तमाम कर दिया। बैल चीते के डर से बगटट भागने लगे। पिंजड़ा गाड़ी से नीचे गिर गया और पता नहीं लगा कि बैल गाड़ी को किस तरफ ले गये।

जब पिंजड़ा गाड़ी से नीचे गिरा। सरदारबाइ के थोड़ी

सी चोट आ गयी थी पर वैसे वह सब तरह से ठीक थी प्रातःकाल जब सूर्य उदय होने को हुआ, सिद्ध और कौए जहाँ सिपाहियो की लाश पड़ी हुयी थी उसके चारों ओर मंडराने लगे। जंगल के उस भाग में फावड़ा एक जंगली जाति बस रही थी। जब उन लोगो ने वहाँ मनुष्यों की लाशें पड़ी हुई देखीं और सरदारबाई को पिंजड़े में बन्द पाया उनको बड़ा आश्चर्य हुंआ। वह विश्वास के कच्चे थे, कहने लगे देखो अम्बे भवानी ने किस प्रकार शत्रुओ के हाथ से अपने जन की रक्षा है। यह कहकर वह खुशी-खुशी पिंजड़े को उठा लाये और अम्बे भवानी को पंडे के सुपुर्द कर दिया।

सरदारबाई ने इन जंगल जाति के लोगों के सद्व्यवहार और पुजारी की दया, और करुणा को देखकर अपने गले से मोतियों का हार उतार कर उनको बांट दिया। वह वहाँ उन की देखरेख में छिपे रूप में किसी सुरक्षित स्थान में रहने लगी।

सरदारबाई अम्बा भवानी में रह रही हैं। उसको कई दिन वहाँ बीत चुके। वीरसिंह के कुछ राजपूत उसकी खोज में आये पर किसी को उसका पता नहीं चला। क्योंकि पुजारी इसका भेद किसी को नहीं देता था। दूसरे सरदारबाई किसी मर्दाने वेश में किसी गुफा में छिपी रहती थी। तलाश करने वाले बड़े परेशान हुए। पर जब पुजारी को यह भले प्रकार से ज्ञात हो गया कि वीरसिंह के भेजे हुए हैं। वह इनको उनके पास ले आया। और इस प्रकार वीरसिंह और सरदारबाई परस्पर मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। उनकी यह सम्मति हुई कि दोनों को पाटन पर धावा बोलकर राजा-रानी को कैद से आजाद कराना चाहिए। और इस इरादे से वह वहाँ से

सरदारबाई का हाथ पकड़ कर माता-पिता दोनों ने वीरसिंह के चरणों में डाल दिया और बोले "आपकी दया और करूणा का बदला हम कुछ चुकाने के योग्य नहीं, सरदारबाई को आपकी दासी के समान अर्पण करते हैं। वीरसिंह ने सिरझुका कर खुशी जाहिर की।

इसके बाद इन दोनों का विवाह रचा गया। रानीपुर पर पहले भी भाँति क्षेमराज को कब्जा दिलाया गया। पाटन और चन्द्रावति पर वीरसिंह राज करने लगा। कुछ समय तक दोनों का जीवन सुख-चैन से व्यतीत हुआ। पर जब दिल्ली के बादशाह को पाटन के हाथ से निकल जाने का समाचार मिला। वह रात-दिन वीरसिंह को दंड देने की चिन्ता में रहने लगा और उसने फिर जीतेजी इनको सुख-चैन से नहीं रहने दिया।

कुछ साल पर्यन्त दिल्ली के बादशाह का भरोसे का सरदार खुमरो खाँ बहुत बड़ी सेना लेकर चन्द्रावति पर चढ़ दौड़ा। राजपूत और पठानों में घोर संग्राम हुआ। वीरसिंह अधिक समय तक दिल्ली की सेना के साथ लड़ता रहा। पर अन्त में उसकी सफलता न हुई। और खुमरो खाँ के हाथों मारा गया। जिस समय उसके छोटे भाई ने संग्राम भूमि से भागकर सरदाबाई को वीरसिंह के मर जाने का समाचार सुनाया। उसके अंग-अंग में क्रोधाग्नि की जलन भड़क उठी और जिन शब्दों में उसने मानसिंह को उसके कायरपन पर धिक्कारा है। वह वास्तव में सोचने और विचार करने योग्य है। वह मानसिंह से कहती है रे नींच ! कायर तुझको लज्जा नहीं आयी कि संग्राम से भागकर तू मुख दिखाने आया है। धिक्कार है उस घड़ी को जिसमें तेरा जन्म हुआ। धिक्कार है

उन नक्षत्रों को जिसके उदय होने के समय तुझ जैसे कुलघाती ने जन्म लिया। तेरा कर्तव्य था कि तू अपने राजा के साथ स्वर्गधाम को जाता। तेरा कार्य था कि राजा के शत्रुओं से उसका बदला लेता। तेरा धर्म था कि सिंह के समान नाद करता हुआ जिधर विफरता उधर ही शत्रुओं के परे के परे तलवार के घाट उतार देता। रे दुष्ट यदि तू मेरे पति का भाई न होता तो इसी समय तुझको अपने हाथ से कतल कर देती। जा मेरी आँखों के आगे से दूर हो जा। मानसिंह वहाँ से नार नीची करके चला आया और इतने में समाचार मिला कि जिस समय वीरसिंह पृथ्वी पर गिरा वह सरदार! सरदार चिल्ला रहा था और मुसलमान बराबर बढ़ते हुए चले आ रहे थे।

मानसिंह को जीवित देख उसकी माता, भावज और बहिन सबने ही इसका तिरस्कार कर दिया। जब माता की इस पर निगाह पड़ी वे बोली रे निर्लज्ज के पुत्र! दूर हो अपना मुंह मत दिखा।

वास्तव में बात यह थी कि मानसिंह कायर था। उसमें लड़ने भिड़ने का साहस था न बल पराक्रम। सरदार की अनुपस्थिति को महसूस करके सरदारबाई उठ खड़ी हुई और अपने ८ महिने के पुत्र को सास की गोद में बिठाकर कहने लगी माताजी! पति ने मरते समय कई बार सरदार शब्द उच्चारण किया था। इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो यह कि कोई वीर पुरुष उसके पीछे अपने सिर पर सरदारी ले ले। दूसरे सम्भव है वह मृत्युकाल में भी मेरे वियोग को सहन न सके। लो यह अब तुम्हारा पुत्र! और तुम ही इसकी माता

ने अपने जनाने वस्त्र उतार दिये तथा जरा बख्तर पहन लिये और शस्त्रों से सुसज्जित हो, तेज कदम घोड़े पर सवार होकर संग्राम भूमि में पहुंची। इसको देखकर राजपूतों में नयी शक्ति का संचार हो आया। वह ऐसा प्रतीत होती थी मानो वीर, शक्ति स्वयं रूप धर के मैदान में आ डटी है। उसकी ललकार को सुनकर राजपूत सेना उमड़ती हुई लहरों के समान आगे बढ़ने लगी और बड़ी शीघ्रता से किले के सब बुर्जों पर सिपाहियों की सेना रक्षा के हेतु जा धमकी। किले का फाटक उसकी आज्ञा से बन्द कर दिया गया। पर शत्रुओं के मुकाबले की चिन्ता में वह स्वयं भीतर न जा सकी। और १०० रण-धीर सरदारों को साथ लिये हुये फाटक पर खड़ी हो गयी। खुसरोखाँ को आशा थी कि वीरसिंह के मरने के बाद फिर किसी को मुकाबले का साहस न होगा। पर जिस समय इसने फाटक पर खड़ी हुई इस वीर ललित ललना को देखा वह आश्-चर्य चकित रह गया। और कहने लगा यह राजपूत देवी है। जिसके फलस्वरूप पाटन मुसलमानों के हाथ से निकल गया था। रानी और उसके बांके शूरवी बड़े साहस और वीरता से लड़ते रहे। सौ सरदारों में से कुछ थोड़े से ही शेष रह गये थे बाकी काम आये। इनमें राजपूत सिपाहियों की गिनती नहीं है। मुसलमानों की सेना को रानी पर विजय पाने का अवसर नहीं मिला। अन्त में जब उनका लश्कर डेरे की ओर चला आया। किले का फाटक खोल दिया गया और रानी अपनी थोड़ी सी सेना के साथ अन्दर दाखिल हुई।

दिल्ली की सेना अनगिनत थी। सरदारबाई के आदमी इने गिने थे वे किले में ही घिर गयीं। एक महिने तक किले में घिरी-२ अनेक कष्ट और क्लेश सहन करती हुयी शत्रुओं का मुकाबला करती रही। पर जब देखा कि रसद की कमी

है और सब लोग घिरे हुए कष्ट और विपत्ति में हैं उसने संध्या समय राजपूत सरदारों को बुलाया और कहने लगी . वीरो ! समय विपरीत हैं । अब हमारे जीवन की अन्तिम घड़ी निकट हैं । एक ओर स्वर्ग है दूसरी ओर नरक है । यदि मरते हैं तो स्वर्ग का सुख भोगने को मिलेगा । यदि जीवन की लालसा है तो नीचता है । ख्वारी है । बरबादी है । अवज्ञा हैं । मैं जानती हूं तुम क्या चाहते हो । मैं जानती हूँ तुम्हारे मन में क्या-क्या है । राजपूत्त कभी अवज्ञा और कायरपन सहन नहीं करते । आज अन्तिम दिन तुम्हारी रानी तुमको पान का बीड़ा बाँटती है । उसको लो और केसरिया बाना पहन कर कल प्रातः ही अपने राजा के मार्ग के अनुगामी बनो ।

सरदारों के समाज में सन्नाटा छा गया । सबने ही प्रसन्न चित्त से शीश नवा कर रानी के हाथ से बीड़े लिये और अपनी बातों और चलन से यह साबित कर दिखाया कि उनके बीच एक भी ऐसा कायर नही है जो धर्म क्षेत्र,रणक्षेत्र में जान देने से जी चुराता हो ।

सारी रात शस्त्रों की सफाई और प्रातःकाल के इन्तजार में व्यतीत हुई । जब प्रातःकाल का समय हुआ सरदारबाई व उसके बाँके वीर राजपूत केसरिया बाना पहनकर किले से बाहर निकले और वह थोड़े से वीर ही मुसलमानों की सेना पर इस तरह टूट पड़े जैसे भूखा सिंह भेड़-बकरियों के गल्ले पर विफर जाता है भूमि लाशो से पट गयी । जगह-जगह पर खून की धारा बह चली । ऐसी वीरता ! हथेली पर सिर रक्खे हुये, निर्भय, साहस और पराक्रम का दृश्य कठिनता से किसी को देखने में आया होगा । रानी की तलवार की काट और चमक तो बिजली के समान थी । जिसकी गर्दन पर पड़ी वही

काम आया प्रतीत होता था मानो स्वयं महाकाली हाथ में खप्पर लिये खून की प्यासी है।

एक-एक ने सैकड़ों को मारा। और इस प्रकार मार-काट करते हुये शत्रुओं की लाशों पर लेटकर वह पवित्र आत्मा स्वर्गधाम को सिधार गयीं। सबसे अन्त में सरदारबाई घायल होकर घोड़े की पीठ पर से नीचे गिर पड़ी और सहज ही शत्रुओं के हाथ गिरफ्तार हो गयी। खुसरो खाँ ने कुछ सोच-समझकर इसको अपने डेरे में स्थान दिया। खुसरो खाँ नीच जाति का हिन्दू था। मुसलमान हो गया था। जब वह सामने आयी। घायल, बेबस, बेकस, दीन-दुखी सरदारबाई के साथ इस नीच, कुटिल और कमीन हिन्दू ने अपनी स्त्री बनने की इच्छा प्रकट की। या तो वह घावों से अधिक खून बह जाने के कारण अधिक बलहीन हो रही थी और वह कहाँ अब क्रोध के कारण उसने खुसरो खाँ को लान तान देना शुरू किया। वह बोली रे दुष्ट ! पापी ! निर्दयी ! हत्यारे ! तुझको न ईश्वर का डर है। न धर्म का डर है। न लोक लाज है और न परलोक का भय है। नींच ! तूने दुनियाँ के लालच से अपने धर्म को बेच दिया। वेदोक्त मार्ग के बदले मुसलमानों के धर्म को ग्रहण किया। तू गीदड़ होकर सिंहाने के हाथ का इच्छुक है। मुझको भी देवलदेवी और कमलादेवी समझा होगा। इस प्रकार उत्तेजित होकर उसने उसको हजार बातें कहीं। बुरी मे बुरी बातें सुनायी और परिणाम यह हुआ कि वह बेसुध होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। खुसरो खां ने उसे उठाकर एक खाट पर डालदिया और खुद उस खाट पर बैठकर पंखा झलने लगा। दो-चार घड़ी पीछे जब उसने आँख खोली। खुसरोखाँ को देखकर उसके नेत्रों में खून उतर आया। उस समय उसने कमर से कटार खींच ली। अगर खसरो खाँ हट न जाता तो

क्या अजब वह उस पर बिजली के समान गिर पड़ती। जब वह हठ गया। उसने वही कटार अपने पेट में झोंक ली आतें बाहर निकल पड़ी और जब देखा कि डेरे में कोई नहीं है वह उठ कर भाग निकली। और चन्द्रावति की ओर चल पड़ी। पर आप ख्याल कर सकते है कि ऐसा घायल प्राणी कैसे रास्ता तय कर सकता है ? थोड़ी दूर ही चलकर वह गिर पड़ी और बेसुध हो गयी। संयोगवश चन्द्रावति का भाटचारुण आ रहा था ' उसने अपनी रानी को पहचान लिया। और उसकी आँतों को पेट में दबाकर अपनी पीठ पर लाद लिया और एक गाँव के निकट ले आया। जब रानी की मूर्छा जागी उसने चारुण से कहा। मेरे शरीर पर जल छोड़ो। चाण्डाल ने मुझको छू लिया है। भाट जान गया कि रानी का अन्तिम समय आ पहुंचा है। इसलिये उसने उसी समय अपने हाथों से स्नान कराया और लींपी हुई जगह पर लिटा दिया रानी बोली, सबकी जय हो ! अपनें पुत्र को तुम सब लोगों के हाथ सौंपती हूं। देखना मेरे बूढ़े सास ससुर को दुःख न होने पावे ईश्वर चन्द्रावती नगरी की प्रजा की रक्षा करे ! सब अपने धर्म पर आरुढ़ रहें ! लो अब मैं जाती हूँ राम ! राम !!

इस प्रकार बोलते-बोलते इस वीर पवित्र और पतिपरायण ललित ललना ने अपने प्राण त्याग दिये और इस प्रकार संसार में सत्यव्रत की नज़ीर कायम की। वह धन्य थी उसका पराक्रम धन्य था। और उसका धर्मभाव सराहनीय था।

पाठकजन ! ईश्वर करे इस पुनीत और पवित्र वीराङ्गना का सूक्ष्म इतिहास आप लोगों को भी सत्य का मार्ग दरशाये गुरु सबका कल्याण करें।

परमसन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज का हरियाणा में

# संक्षप्त सत्संग दौरा प्रोग्राम

१६-२-१६७६ से २०-२-१६८६ सत्संग—नागपुर, श्री आर० डी० कोठारी, ८२, केनाल रोड, रामदास पेट, नागपुर (महाराष्ट्र)

२६-२-१६८६ से २२-२-१६८६सत्संग – इटारसी श्री चरनजीत सिंह, पंजाब साइकिल स्टोर्स, स्टेशन रोड, श्री सुन्दरदास, अमर रेडियोज इटारसी।

२४-२-१६८६ से २७-२-१६८६ तक सत्संग उज्जैन श्रीमती रामगोयल, वस्त्र व्यवसायी, छोटा सर्राफा उज्जैन (२) श्री सूर्यनारायण भट्ट, ३६—अब्दालपुरा, उज्जैन

२८-२-१६८६ से ३-३-१६८६ सत्संग इन्दौर – श्री एम० के० गर्ग, ६-आनन्द नगर, इन्कम टैक्स आफीसर कालोनी, चितावड़ रोड, इन्दौर, फोन नं० ६५५४३

५-३-१६८६ प्रातः १० बजे मानवधाम, ग्राम दुहाई, गाजियाबाद में फकीर सत्संग भवन का शिलान्यास
१२.३० पर भण्डारा

६-३-१६८६ दिल्ली से होशियारपुर को प्रस्थान।

# "मनुष्य बनो" ( हिन्दी मासिक पत्र ) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार आपेक्षित आवश्यक सूचना

| | | |
|---|---|---|
| १—प्रकाशन का स्थान | : | अलीगढ़ |
| २—प्रकाशन अवधि | : | मासिक |
| ३—मुद्रक का नाम | : | श्रीमती सुधा मीतल |
| क—राष्ट्रीयता | : | भारतीय |
| ख—पता | : | शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ । (उत्तर प्रदेश) |
| ४—प्रकाशक का नाम | : | श्रीमती सुधा मीतल |
| राष्ट्रीयता | : | भारतीय |
| पता | : | शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ । |
| ५—सम्पादक का नाम | : | श्रीमती सुधा मीतल |
| राष्ट्रीयता | : | भारतीय |
| पता | : | शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ |
| ६—स्वत्वाधिकारी | : | श्रीमती सुधा मीतल |
| संरक्षक | : | परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज |

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनाङ्क १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. No. L-ALG. 28

Chilveri Narsimloo

मिलने का पता :
'मनुष्य बनो' कार्यालय
शिव भवन, लेखराज नगर,
अलीगढ़-२०२००१ (उ० प्र०)



अवैतनिक सहायक सम्पादक :
महेशचन्द्र मीतल
सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक :
श्रीमती सुधा मीतल

ग्राहक संख्या— 170

श्रीमान Sri Chilwar Narsimhulu
Book Seller
V & PO. Banswada
Nizamabad. AP

मुद्रक : श्रीमती सुधा मीतल, दातादयाल प्रिंटर्स, लेखराजनगर, अलीगढ़।